लटकमेलकम्

(प्रहसनम्)

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्



द्याभवन वाराणसी-१

15/1/63

Dr. S. C. Upadhyaya
M.A., LL.B., D.L., Ph.D

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

८७



कविवर श्रीशङ्खधरविरचितं

लटकमेलकम्

(प्रहसनम्)

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

श्री पं० कपिलदेवगिरिः साहित्याचार्यः



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१९

मूल्य : १-२५

भूमिका

कवि का समय

प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तावना में सूत्रधार राजा गोविंददेव का नाम निर्देश करता है 'गोविन्ददेवः प्रथितः पृथिव्यां श्रीमान् महामाण्डलिकाधिराजः ।' (पृष्ठ ३)। अतः कविवर शंखधर बारहवीं[1] शताब्दी के आरंभ में कन्नौज नरेश गोविन्दचन्द (बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध) के राज्यकाल में हुए थे। इन्होंने 'लटकमेलक' (लटक = धूर्त, मेलक = सम्मेलन) नामक प्रस्तुत प्रहसन की रचना की।

जनश्रुतियाँ

(१) कहा जाता है कि प्रस्तुत पुस्तक के अन्दर 'ढुढौलि', 'सुण्डिवाल', 'दरिहडा' इत्यादि ग्रामीण नामों का उल्लेख भी, कन्नौज देश के ग्रामीण नामों की परंपरा की ओर संकेत करता है।

(२) इसके अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में निर्दिष्ट 'राढीया' वचन-रचना के आधार पर कुछ विद्वानों की राय है कि 'राढ' शब्द बंगाल प्रदेश के उत्तरी भाग के लिए व्यवहृत होता है। ऐसी स्थिति में उस स्थान से जो संबंधित हुए (रीति, धर्म या जाति) वे राढीय कहलाए।

(३) बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के राज्यकाल (११ वीं शताब्दी, या लगभग ११८० से १२०६ अर्थात बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध) में दक्षिण भारत से आए हुए ब्राह्मणों को ही 'राढीय' या राढी नाम प्रदान किया गया और उनकी जो रीति या परंपरा चली वही राढीया कहलाई।[2] कुछ भी हो, इन बातों से भी यही निश्चय होता है कि कवि १२वीं शताब्दी में विद्यमान था।

लोकप्रियता

प्रस्तुत प्रहसन साहित्य जगत में बहुत ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। इसकी लोकप्रियता तथा सर्वव्यापकता के विषय में डा० कीथ का कहना है कि 'प्रहसन को लोकप्रिय तो होना ही चाहिए लेकिन बारहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में—कान्यकुब्ज-नरेश गोविन्दचन्द के समय में—शंखधर कवि के लिखे हुए लटकमेलक से पहले का कोई प्रहसन नहीं मिलता है।' इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि १२वीं शताब्दी में यही एकमात्र

---

१. वाचस्पति गैरोला : संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ८२३।

२. इस विषय की जानकारी के लिए पं० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री (प्राध्यापक, सं० म० वि० हि० वि० वि०) का आभारी हूँ।

लोकप्रिय प्रहसन था। यद्यपि इससे ६०० वर्ष पूर्व का पल्लव-नरेश महेन्द्रविक्रमवर्म विरचित 'मत्तविलास प्रहसन' उपलब्ध होता है। तथापि बीच की छूटी हुई कड़ी को जोड़ने वाला यही प्रहसन है। इसके दो श्लोक—'एष स्वर्गतरंगिणीजलमिलद्दिग्दन्तिदन्तद्युती'....(पृ. २७) और 'कतिपयनिमेषवर्तिनि जन्मजरामरणविह्वले जगति'....(पृ. ५)—दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर (१३६२ ई०) विरचित सुभाषित ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर पद्धति' में उद्धृत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध आलंकारिक महाकवि विश्वनाथ ने अपने अलंकारग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' में—'गुरोर्गिरः पञ्चदिनान्युपास्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च' (पृ. ३६)। इस पद्य को मामूली हेर-फेर करके उदाहरण के रूप में प्रयोग किया है। साथ ही 'साहित्यदर्पण' के छठे परिच्छेद में संकीर्ण प्रहसन के लक्षण-निरूपण के प्रसंग में 'लटकमेलक' का नाम लिया है 'यथा—लटकमेलकादिः।' उक्त उद्धरणों के आधार पर पुस्तक की लोकप्रियता सर्वतोमुखी परिलक्षित होती है।

कथावस्तु

धूर्तमण्डली के कार्य का स्थान दन्तुरा नामक कुट्टनी (दूती) का घर होता है। यहाँ पर मनमोहिनी मदनमंजरी के प्रेम को खरीदने के लिए आतुर सब श्रेणी के लोगों का आगमन होता है। इसका रहस्य कुट्टनी के द्वारा उद्घाटित कर दिया जाता है। इसी बीच में मदनमंजरी के गले में फंसे हुए मछली के काटों को निकालने के लिए जंतुकेतु नामक वैद्य के आगमन से हास्य का वातावरण विशेष रूप से जम जाता है। इस कार्य में वैद्यजी कोरे हैं और उनकी कार्य-पद्धति भी अनुपयुक्त है लेकिन उनका भड़ुआपन देखकर मदनमंजरी को हँसी आती है और सौभाग्यवश गले से काँटा निकल जाता है।

प्रस्तुत प्रहसन दो अंकों में रचित है। धूर्तों का संमेलन होने के कारण इसका नाम लटकमेलक रखा गया है। कवि ने दूसरे अंक में दन्तुरा के विवाह का वर्णन करते हुए समाप्ति में दन्तुरा-परिणय का उल्लेख किया है। अतः इसे 'दन्तुरापरिणय' भी कहते हैं।[1] इसकी कहानी का गठबन्धन जैन भिक्षु तथा शाक्त की प्रेम लीला के ताने-बाने से जोड़ा गया है। कौलमतानुयायी 'सभासलि' की धर्मपत्नी का नाम 'कलहप्रिया' है। शाक्तजी अपनी परिणीता पत्नी से ऊब गए हैं। इसीलिए मदनमंजरी के साथ अपना साँठ-गाँठ बैठाने में लगे रहते हैं। संयोगवश वहीं जटासुर नामक दिगम्बर जी भी आ जाया करते हैं। किन्तु उनका प्रेम दन्तुरा (कुट्टनी) के साथ हो जाता है, जो वेश्या (मदनमंजरी) की अंगरक्षिका थी। सभासलिजी स्वयं 'मदनमंजरी' के प्रणयी चित्त

१. कृष्णमाचारियर : संस्कृत साहित्य का इतिहास।

को अपनी ओर आकर्षित करने में व्यस्त दिखाई पडते हैं और अपने प्रयत्न से दन्तुरा के साथ जटासुर दिगम्बर का विवाह करा देते हैं जिसे देख कर हँसी आती है। कवि ने प्रस्तुत वृत्त के साथ-साथ मदनमंजरी के असफल प्रेमी संग्रामविसर, जन्तुकेतु वैद्यराज, झक्की दार्शनिक फुंकट मिश्र, मिथ्या शुक्ल (नीरस पंडित) और व्यसनाकर (बौद्ध भिक्षु) का सामंजस्य बैठाकर कहानी में एक नया रंग ला दिया है और इन कामलोलुपों का सौदा करने की रीति पर बड़ा सुन्दर कटाक्ष किया है। इससे प्रहसन अत्यन्त आनन्दवर्द्धक और रुचिकर बन गया है। इस प्रकार इसकी कथावस्तु दर्शक के मन को मुग्ध तथा अत्यन्त आह्लादित करने वाली बन गई है।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

सभासलि कौल (शाक्त) मत के अनुयायी हैं। इनकी स्त्री का नाम कलहप्रिया है। ये अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए मदनमंजरी वेश्या के घर डेरा डाले रहते हैं। मदनमंजरी वेश्या की परिचारिका (कुट्टनी या दूती) दन्तुरा से भी इनकी खूब बनती है। ये मदनमंजरी के रूप-यौवन के ऊपर हमेशा वक्रदृष्टि डालते रहते हैं। ये अपनी ओर से दन्तुरा और मदनमंजरी को प्रसन्न रखने का विशेष प्रयत्न करते हैं। कहीं दन्तुरा के व्रण रोग में और कहीं पर मदनमंजरी के गला में मछली का काँटा फँसने पर जन्तुकेतु वैद्यराज से दवा कराने की सलाह देते हैं। कहीं अज्ञानराशि और दिगम्बर सूरिजी के बीच छागी (बकरी) वध के झगड़ा का निपटारा करते हैं तो कहीं मिथ्या-शुक्ल और अज्ञानराशि के साथ प्रसव (बच्चा जनने) कर्म में हाथ बटाते हैं। दिगम्बर सूरिजी के द्वारा रजकी-स्पर्शदोष से दूषित व्यसनाकर के साथ भी इनकी व्यंग एवं उपहास भरी बातें होती हैं। दिगम्बर सूरिजी के दन्तुरा के साथ विवाह का प्रस्ताव करने पर सभासलिजी अपने प्रयत्न से चतुर्वेद पंडित के सहारे पाणिग्रहण करा देते हैं। बाद में मदनमंजरी के प्रेमसूत्र में अपने को बाँधने में समर्थ दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शाक्तजी धूर्तमंडली में व्यवहार-कुशल और सर्वप्रिय कहलाकर अपना भी मनोरथ साधने में निपुण जान पड़ते हैं।

फुंकट मिश्र एक दार्शनिक के रूप में प्रस्थापित किए गए हैं। इनकी दार्शनिकता एवं प्रौढ पाण्डित्य के बारे में कवि ने एक मनोरंजक श्लोक उद्धृत किया है—

गुरोर्गिरः पंचदिनान्युपास्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्रातवितर्कवादाः समागताः फुंकटमिश्रपादाः॥ (पृ. २६)

वैद्यराज 'जन्तुकेतु' की चिकित्सा का उपचार भी लोकविश्रुत है। ये अपनी

चिकित्सा-पद्धति का स्वयं वखान करते हुए कहते हैं कि मेरी दवा से रोग और बढ़ जाता है और अमृत भी विष हो जाता है। ऐसी हालत में रोगी को मेरे जैसे प्राणहर्ता के रहते भला यमराज या औषध की आवश्यकता क्या है ?—'व्याधयो मदुपचारलालिता मत्प्रयुक्तममृतं विषं भवेत्। किं यमेन सरुजां किमौषधैर्जीवहर्तरि पुरःस्थिते मयि॥ (पृ. १६)। जन्तुकेतु को अपने उपचार पर गर्व है। उन्हें वैद्यक ग्रन्थों की छानबीन करने के बाद चरक-संहिता की एकमात्र यही विधि (नुस्खा) पकड़ में आयी है कि जिस किसी वृक्ष की जड़ को जिस किसी वस्तु के साथ में घोंटकर जिस किसी रोगी को देना चाहिए। इसका परिणाम भी जैसा-तैसा होकर ही रहेगा। बाद में जन्तुकेतु ने वैद्यवृत्ति को छोड़कर बाल-तन्त्र का अभ्यास कर लिया है। संभवतः इस क्रिया में इनको सुगमता प्रतीत होती है इसी तरह दन्तुरा के गुदा के भीतर तपाया हुआ फवड़ा को रखने और नेत्ररोग में मदार का दूध, वर का दूध और सेहुड़ के दूध का आंजन करने की बात करता है। इस प्रकार ऊटपटांग बातों के द्वारा अपनी ही अल्पज्ञता सूचित करता है।

व्यसनाकर 'बौद्ध' के रूप में उपस्थित किया जाता है। वह चमरसेन विहार का रहने वाला है। वह गुप्त रूप में किसी धोबिन से अनुराग करता है। यही कारण है कि जब वह मंच पर उपस्थित होता है तो उसका चेतन मन बोल उठता है कि धिक्कार है, कष्ट है। मोटी जंघावाली रजकी (धोबिन) के बिना यह भवन रात में सूना (धनरहित) स्थान की तरह लगता है—'पृथुजघनया रजक्या विना रजन्यां समुत्खातनिधानस्थानमिव विभाति भवनम्। (पृ. ४३)। परन्तु जब दिगम्बर सूरिजी द्वारा जातिहीन स्त्री के स्पर्श से दूषित ठहराया जाता है, तो वह झल्ला उठता है। वह इसका परिशोध करने के लिए बुद्ध भगवान् के वचन का सहारा लेता है और जाति नामक पदार्थ, पदार्थों से भिन्न रूप में तो कभी अवभासित नहीं होता (एतासु पंचस्वभवभासिनीषु प्रत्येकबोधस्फुटमंडलीषु। साधारणं पष्टमिहेक्षते यः शृङ्गशिरस्यात्मन ईक्षते सः॥)। इतना ही नहीं उसके मत में तो सम्पूर्ण पदार्थ ही क्षणिक (क्षणभंगुर) हैं। यहाँ तक कि 'आत्मा' भी स्थायी नहीं है। इसलिए उसे धोबिन का दोष (स्पर्श दोष) कैसे लग सकता है ?

रचनाशैली

प्रस्तुत प्रहसन की रचनाशैली अपने ढंग की अनोखी है। भाषा बहुत ही सीधी-सादी है। साथ ही सरलता का भी पुट मिलता है। अधिक छोटे वाक्यों में गंभीर भाव का भरना कवि की प्रौढ़ता की निशानी है। जगह-जगह समस्त पदों का भी प्रयोग किया गया है, फिर भी प्रभावोत्पादकता सुरक्षित रक्खी गई है। भाषा में एक प्रकार का प्रवाह

है। प्रस्तुत रचना-शैली के माध्यम से 'पंचमकार' के उपासक शाक्तों के सामाजिक दुराचार, बौद्ध संन्यासियों के मिथ्याविहार, दार्शनिकों के अभिमान और अल्पज्ञता का पर्दाफाश वर्णन कवि ने अत्यन्त सजीव भाषा में कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस रचना-शैली के द्वारा कवि ने सामाजिक अवस्था के वर्णन में, हास्यरस के उन्मीलन में और धार्मिक छल-कपट को प्रकट करने में निश्चय ही सफलता अर्जित की है। साथ-ही-साथ बौद्ध तथा जैनों के ऊपर एक मीठी चुटकी ली गई है और समाज को यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि इन सन्तों या उनके अनुयायियों के व्यवहार और सिद्धान्त में करनी और कथनी में आकाश और जमीन का अन्तर है। यद्यपि इनमें जगह-जगह अश्लीलता भी आ गई है, फिर भी बौद्ध, जैन, कापालिक आदि वेद-विरोधी धर्मानुयायियों की कुरीतियों के संशोधन में यह रचनाशैली अतीव सजीव जान पड़ती है।

प्रहसन की परिभाषा

भाण की तरह संधि, सन्ध्यंग, लास्यांग और अंकों के द्वारा विरचित निन्दय पुरुषों के कविकल्पित वृत्त को प्रहसन कहा जाता है। प्रहसन के भी अनेक भेद मिलते हैं जैसे शुद्ध, संकीर्ण आदि। जहाँ पर तपस्वी, संन्यासी, ब्राह्मण आदि में से कोई एक धृष्ट नायक हो वह शुद्ध प्रहसन, जैसे 'कन्दर्पकेलि', किसी व्यक्ति (धृष्ट से भिन्न) का आश्रय लेकर हास्य किया जाय वह संकीर्ण जैसे 'धूर्त चरित', जिस प्रहसन में बहुत धूर्तों, वेश्या, चेट, नपुंसक आदि का आश्रय लिया गया हो, वह भी संकीर्ण प्रहसन कहलाता है और कामुक, कंचुकी, तापस आदि का जहाँ पर अनुकरण किया जाय वह विकृत प्रहसन के अन्तर्गत आता है।[१] जैसे लटकमेलक आदि।

✓ संस्कृत साहित्य में प्रहसन और उसका विकास

प्रहसन शब्द का व्यवहार हँसी, दिल्लगी, परिहास, खिल्ली आदि अर्थों में होता है। पर यहाँ काव्यमिश्र रूपक से अभिप्राय है। अब प्रश्न यह है कि समाज में इन रूपकों की उपयोगिता है तो क्यों और किस रूप में। इस पर संक्षिप्त विचार कर देना अत्यावश्यक जान पड़ता है। मनुष्य के जीवन तत्त्व को कायम रखने के लिए जैसे भोजन (षड्रस) आवश्यक है, वैसे ही उसे स्वस्थ और प्रफुल्लित रखने के लिए हास्य रस (हँसी) का भी महत्त्वपूर्ण उपयोग है। प्रेम तथा क्रोध इत्यादि भावों का अस्तित्व पशुपक्षी आदि जीवों में देखने को मिलता है, किन्तु मानव के जीवन तत्त्व से हास्य

१. कविराज विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ५५१–५५६।

रस का सीधा सम्बन्ध है। साहित्यकार जब यह देखता है कि समाज में दुराचार एवं कुरीतियों के प्रचार करने वालों का आधिक्य हो रहा है तब वह अपने 'हास्य' के द्वारा मधुर वार करने लगता है। इस विशिष्ट साधन के द्वारा वह बिना किसी वैर अथवा लड़ाई झगड़ा के अपना वांछित कार्य साधने में सफल होता है। जब आए दिन होने वाली घटनाएँ सामाजिक जीवन को अस्तव्यस्त एवं ह्रासोन्मुख कर देती हैं, तब विचारशील सच्चे साहित्यकार का मस्तिष्क इन पर गहराई से सोचने के लिए बाध्य हो उठता है। क्योंकि इन घटनाओं का सारा दारमदार सामाजिक व्यक्तियों पर ही आधारित है। सौभाग्यवश वह व्यक्ति अपने राजनीतिक व्यक्तित्व तथा धार्मिक मर्यादा के नाते जनमानस में श्रद्धा, लोकप्रियता एवं समादर का पात्र बनता है और फिर बाद में वही व्यक्ति छिपे रूप में लोककल्याण एवं जनमानस को क्षुब्ध करने वाले कार्यों में लीन हो जाता है और समाज को पतन की ओर ले जाता है, तो समाज उसे अपराधी एवं समाज का गद्दार साबित कर देता है। ऐसा ही व्यक्ति सफल लेखक एवं सच्चे साहित्यकार का कलम का विषय बनता है।

अब साहित्यकार के लिए सर्वप्रथम कर्तव्य यह हो जाता है कि संसार के हितार्थ इन व्यक्तियों के चारित्रिक दोषों के उद्घाटन करने में वह किस शक्ति का सहारा ले। सर्वप्रथम लेखक में शिष्टतापूर्ण 'हास्य' के प्रयोग की योग्यता भी होनी चाहिए। हास्य की लेखनी तलवार से भी दमदार एवं तेज हथियार है, जिसका वार तो बाहर से नहीं दिखलाई देता, किन्तु उसका आघात अन्दर से हृदयस्थल को विद्ध करता है और वह अपने वांछित प्रयोजन में सिद्धहस्त दिखाई पड़ती है[१]।

सृष्टि के आरम्भ से ही भारत एक धर्मप्रधान देश रहा है। एक जमाना था कि धर्म के नियन्ता एवं गुरुओं के हाथ में ही नेतृत्व की बागडोर थी और उन्हीं धर्म-प्रणेताओं के हाथ में समस्त समाज के पतन एवं निर्माण का सामर्थ्य था। हमारे देश का इतिहास यह भी बतलाता है कि किसी समय बौद्ध संन्यासियों के हाथ में इस धार्मिक संसार के सञ्चालन का भार सौंपा गया था। वह इतिहास का स्वर्णयुग था जब कि बड़े-बड़े बौद्ध मठ (विहार) एवं चैत्य उत्तम कोटि की साधना, तपस्या एवं चारित्रिक निर्माण का क्षेत्र माने जाते थे और उनमें रहने वाले समग्र भिक्षु समुदाय उदारता, सत्यता, सच्चरित्रता तथा त्याग, परोपकार, तप एवं तेज का दिव्य रूप समझा जाता था, पर समय के उलटफेर के कारण वही बौद्ध संन्यासी मानव सुलभ दुर्बलता के शिकार बन बैठे। उनके पावन चरित्र का दिनोंदिन ह्रास होने लगा।

---

१. देखिए—उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५४६।

बौद्ध भिक्षुणियाँ उस समय के राजाओं के पुत्र और पुत्रियों की कामकेलि की अभिवृद्धि में अपने को व्यस्त करने में लग गई थीं। यही स्थिति दूसरे धर्म की भी थी।

बौद्ध धर्म के पतन के कारण

मध्यकालीन मुसलमानों के शासनकाल में भोग-विलास का बाजार तेज हो चला। फलतः हिन्दू नरेश, सन्त समाज तथा दूसरे वर्ग के लोगों पर भी इन मुसलमानों की विलासिता एवं चारित्रिक हीनता का असर होने लग गया था। सारा वातावरण ही दूषित हो गया। इसीलिए मध्यकालीन धार्मिक स्थानों में व्यभिचार एवं भ्रष्टाचार को पनपने का उचित अवसर मिला और इन्हीं सब कारणों से इस युग में 'प्रहसन' को एक सम्मानित साहित्यिक साँचे में ढाल दिए जाने की प्रथा चल पड़ी। हमारे साहित्य के इतिहास में 'प्रहसन' को एक विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण पद उपलब्ध है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी हास्य के तीन भेदों (उत्तम, मध्यम तथा अधम) का बड़ा ही सजीव एवं मार्मिक वर्णन देखने को मिलता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे पूर्व आचार्यों को भी अशिष्टतापूर्ण एवं शिष्टतापूर्ण हास्य के बारे में पूर्ण रूप से अवगति थी। हास्य के लेखक में आत्मक्षमता एवं सावधानी होनी चाहिए, क्योंकि लेखक के जरा-सी असावधानी से वह शिष्ट एवं अशिष्ट रूप में परिणत हो जाता है। अतः हास्य के रचयिता को इसका सूक्ष्म ज्ञान होना परम आवश्यक तथा उपयोगी है। जिन समीक्षकों की यह धारणा बनी है कि संस्कृत साहित्य में शिष्ट हास्य का सर्वथा अभाव है। उनकी धारणा बिल्कुल निर्मूल है। क्योंकि हम महाकवि कालिदास के विदूषक को कभी भी कहीं कुवाक्य का प्रयोग करते नहीं पाते हैं। हाँ, आत्म बुभुक्षा की शान्ति के लिए पेटूपना का व्यवहार जरूर करता है। इससे वाक्य में एक अपूर्व चमत्कार का सर्जन कर दर्शक एवं पाठक का मनोरञ्जन ही करता है। काव्यकला की दृष्टि से पुराने प्रहसन भी परिशुद्ध हास्य के पोषक हैं और अश्लीलता से बहुत ही अलग हैं। इनमें बौद्ध, जैन, चार्वाक, शैव तथा कापालिक मतों के ऊपर मार्मिक व्यंग्य एवं मीठी चुटकी ली गई है वह इसलिए कि इनके प्रवर्तकों के सिद्धान्त और व्यवहार में, करनी और कथनी में एक महान् अन्तर है। उनके इस कार्य से जनता में व्यभिचार एवं भ्रष्टाचार के फैलने की आशंका है इसीलिए इस साहित्यिक शैली के द्वारा जनता को सजग रहने की चेतावनी दी गई है। मध्यकालीन प्रहसनों में अश्लीलता का चित्र जो देखने में आता है वह उस समय के भ्रष्ट तथा विलासप्रिय समाज का प्रतिबिम्ब है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि

'रूपक' की इस सुकुमार शैली की ओर हमारे कवियों का विशेष ध्यान नहीं था। इसीलिए जहाँ रूपकों की विपुल रचना से संस्कृत साहित्य का अक्षय भंडार भरा है वहीं प्रहसनों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती हैं।[1] इन्हीं प्रहसनों के विकास के परिणाम-स्वरूप प्रस्तुत प्रहसन भी है।

देश की अवस्था पर प्रकाश

प्रस्तुत प्रहसन द्वारा देश की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का एक निखरा रूप सामने आ जाता है। हमारे देश में वेश्याओं की सत्ता बहुत पुरानी है और वह आज भी अपनी मर्यादा को किसी न किसी रूप में संजोए हुए है। 'लटकमेलक' के रचनाकाल में भी ये वेश्याएँ थीं। संभवतः इनका दो वर्ग था—वेश्या और गणिका। वेश्याओं का काम अपनी मोहनी रूपसज्जा द्वारा धन पैदा करना था और गणिका विशेष रूप से संगीत (नाचना, गाना, बजाना) के द्वारा अपनी जीविका चलाती थी। इसी विषय की चर्चा 'दशरूपक' में भी आती है (वेशो भृतिः सोस्या जीवनमिति वेश्या। तद्विशेषो गणिका' दशरूपक ३५०)। यही कारण है कि वेश्या की अपेक्षा गणिका उत्तम मानी जाती है। प्रस्तुत प्रहसन की वेश्या मदनमंजरी इसकी कारगुजारी तथा जीवन की सुरक्षा का उत्तरदायित्व दन्तुरा कुट्टनी पर है। दन्तुरा कुट्टनी के यहाँ भी भुजंगों (धूर्तों) का संगीत होता है।

लटकमेलक के अनुसार सभ्य लोग भी इन वेश्याओं से अपना सम्पर्क स्थापित करते थे। पर समाज की दृष्टि से यह अत्यन्त घृणित कार्य था। सभासलि उपाध्याय भी ऐसे ही व्यक्ति हैं। इनकी परिणीता भार्या कलहप्रिया है, फिर भी ये वेश्यागामी थे। इसीलिए प्रथम अंक में कुलव्याधि जब दन्तुरा के द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठते हुए सभासलि को देखता है, तो कहता है—'उपाध्याय, यदि तुम्हारे इस चरित्र (भ्रष्ट व्यवहार) को कलहप्रिया जान जायगी, तो फिर हमें क्या करना चाहिए (उपाध्याय यदि तव चरितं कलहप्रिया ज्ञास्यति, तदा युष्माभिः किं कर्तव्यम्)।'

समाज के प्राणियों को स्वस्थ तथा दीर्घायु होने में देश के बड़े-बड़े वैद्यराजों का महान् योगदान रहा है। गुप्तयुग में 'धन्वन्तरि' जैसे व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और उसने अनेक वैद्यक ग्रन्थों को जन्म दिया। जहाँ वाग्भट, माधवनिदान, चरक आदि ग्रन्थों के निर्माताओं से लाखों प्राणियों को जीवन-दान मिला, वहाँ 'नीम हकीम खतरे जान' वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाले वैद्य, वैद्य ही नहीं वैद्यराज की उपाधि को

१. देखिए—उपाध्यायकृत संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ५४६

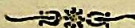
धारण कर जनता के बोझ बन गए थे। प्रस्तुत प्रहसन के समय में भी वैद्यों की यही हालत थी। वैद्यराज जन्तुकेतु इसके उदाहरण हैं। इन्हें अपने विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं था। चरक, सुश्रुत, माधव निदान आदि जैसे महान् ग्रन्थों के नाम पर अधकचड़े ज्ञान वाले वैद्य जनता को धोखा में डालते थे। जन्तुकेतु को भी चरकसंहिता का नुस्खा मिला था। वह कहता है कि जिस किसी वृक्ष की जड़ को जिस किसी चीज के साथ पीस डाले और जिस किसी रोगी को दे दे जैसा तैसा फल होगा ही। (यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पेषयेत इत्यादि) जिस चरक नामक ग्रन्थ पर आयुर्वेद तथा सारे वैद्य समाज को नाज है। ऐसे लोकविख्यात सिद्धान्त ग्रन्थ में भला ऐसी ऊटपटांग बातों के लिए स्थान कहाँ ? पर यह वैद्यराज (जन्तुकेतु) अपनी करनी को इस महान् ग्रन्थ पर मढ़ देने में गौरव समझता था। 'लटकमेलक' के समय में बौद्धों के प्रभाव से तन्त्र-मन्त्र का भी बोलबाला था। यही कारण था कि वैद्य लोग भी अपनी वैद्यवृत्ति को छोड़ कर तन्त्र विद्या का भी अभ्यास करते थे। इस क्रिया से छोटे-छोटे बच्चों को 'टोटका' करते थे। संभवतः इसमें भी बच्चों की प्राणरक्षा के बजाय मारने की ही बात सिद्ध होती है। जन्तुकेतु वैद्य भी इस अपवाद से खाली नहीं है।

प्रस्तुत प्रहसन के द्वारा देश की धार्मिक अवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यों तो शुंग, सातवाहनों तथा गुप्त राजाओं के समय से ही बौद्ध तथा जैन धर्म में ह्रास की स्थिति आरम्भ हो गई थी। पर उसका पूर्ण रूप ईसा की ९वीं तथा १०वीं शती में देखने को मिलता है। बौद्धों के दो सम्प्रदाय जो हीनयान और महायान थे उनमें तीसरा वज्रयान (जिसमें मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र आदि का वर्णन है) सम्प्रदाय भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। बाद में यही इसके मूल का विध्वंसक भी सिद्ध हुआ फलतः वज्रयान सम्प्रदाय के बौद्धों की जो क्रियाएँ थीं वे भी बहुत ही आपत्तिजनक मालूम पड़ती थीं। यही कारण था कि जो बौद्ध भिक्षु तथा जैन भिक्षु पवित्र, सच्चरित्र थे वे ही चरित्रहीन हो गए थे। बौद्ध-विहार जो आरम्भ में विद्या तथा धर्म के केन्द्र थे वे व्यभिचार के अड्डे बन गए थे। प्रस्तुत प्रहसन के समय में जैन तथा बौद्ध धर्मावलंबियों की यही दशा थी। जटासुर दिगम्बर और चरमसेन विहार के निवासी व्यसनाकर (बौद्ध) इसके मूर्तिमान् रूप हैं। जटासुर दिगम्बर स्वयं काम से व्याकुल होकर सभासलि से अपने लिए दन्तुरा की याचना करते हैं और मदनमंजरी का सभासलि के साथ प्रणयसूत्र जोड़ते हैं—'भो उपाध्याय महाभाग, अहं कामाकुलः। विवाहश्रद्धालुरेषापि कुट्टनी तरुणीव प्रतिभाति। तन्मम कृते प्रदानेन प्रसीदतु। मदनमंजरी पुनर्युष्मदनुरक्ता भवतु' (पृ० ४६)। व्यसनाकर का एक धोबिन से प्रेम हो गया है। इसकी चर्चा अपने आप करते हैं—

"हा धिक् कष्टं' पृथुजघनया रजक्या विना रजन्यां समुद्रत्खातनिधानस्थानमिव विभाति भवनम्' (पृ० ४३)। पर समाज में दिगम्बरजी को व्यक्तिगत आक्षेप से चिढ़ होती है। इस पर वे 'जाति नामक कोई पदार्थ नहीं है।' यह कहकर बुद्ध का उद्धरण देते हैं—'एतासु पचस्वभासिनीपु प्रत्येकबोधस्फुटमंडलीपु'···(पृ० ४४)। अतः यह निःसंकोच रूप से मानना होगा कि 'लटकमेलक' के रचनाकाल में इन धर्मध्वजियों के कथनी और करनी तथा आचार-विचार में काफी दोप आ गए थे और बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म लड़खड़ाती हालत में थे।

लटकमेलक के काल में बौद्ध तथा जैन का स्थान ब्राह्मणधर्म ग्रहण कर रहा था। शंकराचार्य के मत के मानने वालों के साथ-साथ रामानुजाचार्य (बारहवीं शताब्दी) का भी प्रभाव जनता पर पड़ रहा था। वेदान्तवादियों के द्वैतवाद और अद्वैतवाद का झमेला खड़ा हो गया था। बौद्धों के कठोर तर्क-प्रहारों से अपनी सुरक्षा करने के लिए 'प्रभाकर' के सिद्धान्तों को मानने वाले भी थे। दूसरे अंक में फुंकट मिश्र तथा मिथ्याशुक्ल के परस्पर शास्त्रार्थ में इनका सुन्दर दिग्दर्शन मिलता है। फुंकट मिश्र को 'एक दंड' शंकराचार्य के मत के अभ्यासी कहा गया है (एकदण्डमतमभ्यस्तं भवद्भिः)। प्रथम अंक में सभासलि ने जटासुर के, जो पहले त्रिदण्डी (रामानुजाचार्य के मत का अनुयायी) था फिर एक दण्डी होने की बात कहता है (पुनस्त्रिदण्डः प्रवरेकदण्डः)।

विवाह का भी मनुष्य जीवन से गहरा नाता है। प्रस्तुत प्रहसन के द्वारा उस समय के विवाह की रीति-रिवाज पर भी प्रकाश डाला गया है। उस काल में सवर्ण जाति की स्त्री के साथ तो विवाह होता ही था फिर भी असवर्ण जाति की स्त्री से भी विवाह करने की मनाही नहीं थी। सभासलि दन्तुरा के साथ दिगम्बर सूरि का पाणिग्रहण कराने में सफल दिखाई पड़ते हैं और स्वयं मदनमंजरी के प्रणयी हृदय में अपना अस्तित्व जमाते हैं। संभवतः वेश्याओं को अपने वास्तविक जीवन की अपेक्षा वधू होने में अधिक गौरव की अनुभूति होती थी। तभी तो दिगम्बर सूरि की वधू बनने में दन्तुरा को भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती। यही स्थिति मदनमंजरी की भी सभासलि के साथ रहने में परिलक्षित होती है। इस प्रकार इस प्रहसन के द्वारा तत्कालीन अवस्था का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है।



॥ श्रीः ॥

लटकमेलकम्

'प्रकाश' हिन्दी व्याख्योपेतः

प्रथमोऽङ्कः

गौरीचुम्बनचञ्चलाञ्चलवलचन्द्रप्रभामण्डलं
व्यावल्गत्फणिकुण्डलं रतिरसप्रस्विन्नगण्डस्थलम् ।
प्रौढप्रेमपरम्परापरिचयप्रोत्फुल्लनेत्राञ्चलं
शंभोरस्तु विभूतये त्रिजगतामुन्मत्तगङ्गं शिरः ॥ १ ॥

पहला अंक

जिस पर, मुख चुम्बन करते समय गौरी के चंचल आँचल से घिरा चन्द्रमा का प्रभामंडल है, (कानों में) सर्पों के कुण्डल हिल रहे हैं, रतिरस के कारण कपोलभाग पसीने से तर हो चला है, प्रौढ़प्रेम की परंपरा में (प्रेम संबंधी बातों की जो शृंखला बँध गई उसमें) परिचय (कामुक प्रेमी की मनोवृत्ति का ज्ञान) होने के नाते नेत्र खिल गए हैं, और गंगाजी उन्मत्त (विवेक-हीन) हो चुकी हैं; ऐसा जो भगवान् शंभु का सिर है वह तीनों लोकों के ऐश्वर्य के लिए होवे ॥ १ ॥

अपि च ।

रक्षाक्षावलिमाः परित्यज जटाः कोऽयं मदप्रक्रमः
कौपीनं त्यज मुञ्च मुञ्च नखरव्यापारमास्थानिकम् ।
इत्युद्भ्रान्त इवोल्लपन्नवतु वो मन्दं निकुञ्जोदरे
रुद्राणीसुरतप्रबन्धविकलः खण्डेन्दुचूडामणिः ॥ २ ॥

अपि च ।

प्रातः सहस्रकिरणप्रणिपातभीरुः
कक्षातटप्रणयिनीं मदनप्रशस्तिम् ।
आस्तां जगत्त्रयमुदे तिरयन्भुजाभ्यां
गौरीनखक्षतिपदावलिमिन्दुमौलिः ॥ ३ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । यतः ।

और भी :—

आह ! रक्षासूत्र और रुद्राक्ष की माला तथा जटाओं का परित्याग करो, यह नशे का उपक्रम कैसा, कौपीन हटाओ (छोड़ो) और स्थान-स्थान के नख व्यापार को जाने दो, जाने दो । इस तरह पार्वती के साथ संभोग की तैयारी में उन्मत्त (पागल) की नाईं लताकुंज में धीरे-धीरे बात करते हुए भगवान् शिव आप लोगों की रक्षा करें* ॥ २ ॥

और भी :—

प्रातःकाल हजारों किरणवाले सूर्य के प्रणाम से शरमीले (भीरु) बगल, में की गई, मदन की प्रशस्ति रूप पार्वती की नखक्षतों की पंक्ति को अपनी दोनों भुजाओं से छिपाते हुए भगवान् शंकर तीनों लोकों के आनन्द के लिए होवें ॥ ३ ॥

(नान्दी के अनन्तर)

सूत्रधार—विस्तारपूर्वक नान्दी का पाठ करने की आवश्यकता नहीं ।

क्योंकि :—

---

*यहाँ पर कामविह्वल शंकर, जो पार्वती को कहना चाहिए था उसे स्वयं बक रहे हैं ।

गोविन्ददेवः प्रथितः पृथिव्यां श्रीमान् महामाण्डलिकाधिराजः ।
कविप्रियो नाटकदर्शनार्थमादेशयन् मां रणरङ्गमल्लः ॥ ४ ॥

यदद्य वसन्तसमयसमुचितेन कविराजश्रीशङ्खधरविरचितेन लटकमेलकनाम्ना प्रहसनेनास्मान् विनोदयेति । अस्य च सकलराजचक्रवालकुलकमलवनविकासभास्करस्य प्रत्यर्थिपार्थिवमहार्णवमथनाकुलितदिक्कुञ्जरकदम्बस्यार्थिजनतापतस्करस्याज्ञा कस्य न करणीया । तथा हि ।

निस्त्रिंशक्षतकुम्भिकुम्भविगलन्मुक्ताकलापाङ्कुराः
कङ्कालामलकर्परशाः पतदसृक्पङ्कप्रलिप्तोदराः ।
मज्जद्भूधरकोटिमन्थनकलादत्तारिवीरश्रियो
येनैता विहिताः पयोधिविषमा भीमा रणक्षोणयः ॥ ५ ॥

श्रीसम्पन्न, राज राजेश्वर, युद्धकला में पारंगत; कवियों के प्रेमी, भूमण्डल में विख्यात गोविन्ददेव ने नाटक प्रदर्शित करने के लिये मुझे आदेश दिया है। कि आज वसन्त समय के अनुरूप, कविराज श्री शंखधर द्वारा विरचत 'लटकमेलक' नामक प्रहसन से हमलोगों को आनंदित करो। समस्त राज-समुदायरूपी कमलवन को विकसित करनेवाले सूर्य और शत्रुराजारूपी महार्णव के मंथन से दिशारूपी हाथियों के समूह को भी व्याकुल कर देनेवाले, तथा याचक जनों के संताप को दूर करने वाले ऐसे राजा की आज्ञा को भला कौन नहीं पालन करता। क्योंकि :—

('जिस रणभूमि में) तलवार से क्षतविक्षत (कतरे गए) हाथियों के 'कुम्भों से गिरकर गजमुक्ताओं का ढेर लग गया है, (सियार आदि जानवरों से चाटे जाकर) साफ हुए कंकाल खप्पर बन गए हैं, निरंतर गिरते हुए खून से जो गँधली बन गई है, जहाँ संग्राम के लिए आए हुए करोड़ों राजाओं के मर्दन की कला के द्वारा, शत्रुओं की वीरलक्ष्मी उपलब्ध हुई है, ऐसी रण-भूमि को जिसने समुद्र की भाँति (समुद्रपक्ष में—जहाँ निर्दय (निस्त्रिंश) कुम्भि-कुम्भ नामक जलजन्तुविशेष और मुक्तादि हैं, टूटी-फूटी शंख-सीपियाँ

अपि च ।

येन गभीरे समरे रिपुगणमुन्मथ्य मार्गणैरगणैः ।
मार्गणनिग्रहविलब्धाश्चित्तचमत्कारिणः करिणः ॥ ६ ॥

(नेपथ्ये)

अये, कोऽयमनेकपण्डितमण्डितायां सभायां कविराजतां नाटयितुमुद्यतः ।

सूत्रधारः—अलमतिप्रलपितेन । यतः ।

चित्रं चरित्रं स्खलितव्रतानां शीलाकरः शङ्खधरस्तनोति ।
विद्वज्जनानां विनयानुवर्ती धात्रीपवित्रीकरणः कवीन्द्रः ॥ ७ ॥

किं च । गोविन्दराजपुरस्कृतायाः सरस्वत्याः कुतो दुर्जनतर्जनावकाशः । उक्तं च तेनैव कविना—

हैं, जिसका भीतरी भाग कीचड़मय है, डूबते हुए मन्दराचल की कोर से मथने की कला से दैत्यों की वीरश्री देवों को ही जहाँ मिल गई है) भयंकर और विषम बना दिया है ॥ ५ ॥

और भी :—

जिसने भयंकर समर में अगणित बाणों के द्वारा शत्रुओं को मथकर चित्त को चमत्कृत करनेवाले हाथियों को मानों बाणों के द्वारा प्राप्त किया है ॥ ६ ॥

(नेपथ्य में)

अरे ! यह कौन है, जो अनेक पंडितों से मंडित सभा में कविराज बनने का अभिनय करने में प्रवृत्त हो रहा है ।

सूत्रधार—ज्यादा बकने की जरूरत नहीं । क्योंकि :—

जो विद्वज्जनों की नम्रता का अनुगमन करने वाले हैं, जिनसे पृथ्वी माता पवित्र हो गई हैं, जो शील की खान हैं, ऐसे कवियों में श्रेष्ठ शंखधर आचार-विचार से गिरे हुए लोगों के अनोखे चरित्र का विस्तार करने जा रहे हैं ॥ ७ ॥

और राजा गोविंददेव से पुरस्कृत सरस्वती को दुर्जनों को डाटने-फटकारने का अवकाश कहाँ ! उस कवि ने ही कहा है :—

वक्रा विश्वविरोधिनः कतिपये द्वित्राः पवित्राशयाः
क्रूरोक्तिप्रकरोद्धुरास्त्रिचतुरा दोषोन्मुखाः पञ्चषा ।
दृष्टः क्वापि लसद्द्विजिह्वदमनव्यापारलीलानिधे-
र्गोविन्दादपरः परः स्वगुणग्राही न कश्चित्पुनः ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

कतिपयनिमेषवर्तिनि जन्मजरामरणविह्वले जगति ।
कल्पान्तकोटिबन्धुः स्फुरति कवीनां यशःप्रसरः ॥ ९ ॥

(नेपथ्ये)

मुखकमलं परिचुम्बन्नलिभरदरदलितपद्मिनीनिवहः ।
अयमुपसर्पति मन्दश्चन्दनवनपावनः पवनः ॥ १० ॥

(इस संसार में) कुछ लोग तो कुटिल तथा विश्व को बुरा-भला बताने वाले हैं, पवित्र भावनावाले दो-तीन ही होते हैं, तीन-चार ऐसे हैं जो क्रूर बातों के कथन में ही जुटे हुए हैं, पाँच-छः ऐसे होते हैं जो दूसरों के दोषों की ओर लगे हुए हैं; किन्तु दुष्टों के दमन-व्यापार की लीला के निधि, गोविन्ददेव के सिवाय दूसरों के गुणों को ग्रहण करनेवाला कोई भी कहीं देखने में नहीं आता ॥ ८ ॥

और भी :—

कुछ ही क्षणों तक रहनेवाले और जन्म, जरा तथा मरण से विह्वल इस संसार में प्रलय के बाद करोड़ों वर्ष तक जीवित रहनेवाली कवि की कीर्ति ही है जो फड़कती रहती है ॥ ९ ॥

(नेपथ्य में)

भौंरों के भार से जरा-सा झुकी हुई कमलिनियों से उत्पन्न (निवह= उत्पन्न हुई) एवं मुखरूपी कमल को चूमता हुआ यह पवन चन्दनवन (के स्पर्श) से पवित्र होकर धीरे-धीरे बह रहा है ॥ १० ॥

सूत्रधारः—(आकाशे कर्णं दत्त्वा ।)

द्विमुखानां पटुडिण्डिमगोमुखझिल्लीमृदङ्गपटहानाम् ।
अयमपरः श्रुतिहारी विहरति गगनाङ्गणे निनदः ॥ ११ ॥

(पुरोऽवलोक्य ।) अये, दन्तुरायाः कुट्टन्याः पुरतो भुजंगसंगीतकं वर्तते । तदुपसर्पामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति दन्तशूलग्रामीणा दन्तुरा नाम कुट्टनी ।)

दन्तुरा—(परिक्रम्यावलोक्य च ।) एसो सो मत्तकलकण्ठकलअलाकुलिअदसदिम्मुहो वसन्तसमअसमारम्भो वट्टदि । ता किं ण गिण्हदि वन्धईकदं भूइभाअणं दरिहडागामीणो तवस्सिओ अण्णाणरासिः । अण्णं अ हग्गडालगामीएण जडासुरदिअम्बरेण ण इच्छिआ पिच्छिआ । मुण्डिवालगामीएण सहासलिणा महोपज्झाएण वि वन्धअं कदुअ रअणकरण्डिआ छण्डिआ । ही ही ही । ढुण्ढौलीगामीणस्स फुक्कटमिस्सस्स णिरक्खरं सच्छपोत्थिअं पवाहे पडिदम् । हडिवाडिगामीणस्स णिरक्खरसुअस्स

सूत्रधार—(आकाश में कान देकर)

डिंडिम, गोमुख, झिल्ली, मृदंग, डंके जैसे दोमुँहे वाद्यों का यह दूसरा शब्द (आवाज) है; जो कानों के लिए आकर्षक है और आकाश में गूँज रहा है ॥ ११ ॥

(आगे देखकर) अरे, 'दन्तुरा' नामक कुटनी के आगे धूर्तों (भड़ओं) का संगीतक छिड़ा हुआ है । इसलिये मैं भी जाता हूँ । (यह कहकर चला जाता है ।)

प्रस्तावना समाप्त

(इसके बाद दन्तशूल गाँव की दन्तुरा नामक कुटनी का प्रवेश होता है ।)

दन्तुरा—(परिक्रमा करके और देखकर) यह तो उस वसन्त का समय आरंभ है, जिसमें मत्त कोकिल के कोलाहल से दसों दिशाएँ आकुलित हो गई हैं । 'दरिहडा' गाँव के रहने वाले तपस्वी अज्ञानराशि बंधक में

जन्तुकेउणो महावेज्जस्स ओसहकरण्डिआ मूसएहिं खण्डिदा। टिक्कडउ-वाडगाममुह्मण्डणेण कुलवाहिणा बटुएण वन्धनं कदुअ ण पत्थिआ धुत्तिआ। णिस्सतानग्गामसरोवररात्रहंसेण संगामविसरेण राउत्तराएण बन्धअं कदुअ सुणअस्स पाणिअं दिण्णम्। ही ही ही। वगउलीगामी-णस्स झगडगसारस्स ठक्कसाहुणो लेहसंपुडिआ पवाहपडिआ। चमरसे-णविहारवासिणा तेण वन्दिएण वसणाअरेण णिद्दारिअं पडसाडिअम्। ता एहिं दुव्विदद्दे हिं भण्डिदम्मि। भणिदं च केणावि—

दुट्ठभुअंगो जो णिअघरलज्जइ दुट्ठसिणेहो जो दाणविवज्जइ।
स कुरूओ जो हि अए ण रुच्चइ पत्थरकठिणो जो णिट्ठु रं वच्चइ ॥१२॥

(एष स मत्तकलकण्ठकलकलाकुलितदशदिङ्मुखो वसन्तसमयसमा-रम्भो वर्तते। तत्किं न गृह्णाति वन्धकीकृतं भूतिभाजनं दरिहडाग्रामीणस्त-पस्वी अज्ञानराशिः। अन्यच्च हग्गउलीग्रामीणेन जटासुरदिगम्बरेण नेच्छिता पिच्छिका। सुण्डिवालग्रामीणेन सभासलिना महोपाध्यायेनापि वन्धकं कृत्वा रत्नकरण्डिका त्यक्ता। ही ही ही। ढुण्ढौलीग्रामीणस्य फुक्कटमिश्रस्य निर-क्षरं शास्त्रपुस्तकं प्रवाहे पतितम्। हडिवाडिग्रामीणस्य निरक्षरसुतस्य जन्तु

रक्खे हुए (अपने) भस्म के पात्र को क्यों नहीं उठा ले जाता? और 'हग्गउली' ग्रामवासी जटासुर दिगम्बर *पिच्छिका (मोरछल) को क्यों नहीं चाहता? 'सुण्डिवाल' ग्राम के रहने वाले महामहोपाध्य सभासलि ने भी रत्न की पेटी धरोहर रख दी है। ही, ही ही। 'ढुंढौली' ग्राम के फुंकटमिश्र का अक्षरशून्य शास्त्रीय पुस्तक प्रवाह (धारा) में गिर गई। 'हडिवाडि' ग्राम का निवासी निरक्षरसुत जन्तुकेतु महावैद्य की

---

* पिच्छिका—मोर के पंख की बनी चँवरी को कहते हैं, जो जैनी साधुओं में केवल दिगम्बर ही इसे अपने साथ में रखते हैं। वे इससे बैठने की जगह को साफ करते हैं। जैन श्वेताम्बर इसे अपवित्र मानते हैं। इसीलिए वे अपने लिए ऊन की बनी चँवरी का प्रयोग करते हैं। इसे रयोहरण या रजोहरण शब्द से पुकारते हैं। संप्रदाय भेद से इसे आकार में छोटा-बड़ा भी किया जाता है।

केतोर्महावैद्यस्यौषधकरण्डिका मूषकैः खण्डिता। टिक्कडउवालग्राममुखमण्डनेन कुलव्याधिना बटुकेन बन्धनं कृत्वा न प्रार्थिता धोतिका। निःसंतानग्रामसरोवरराजहंसेन संग्रामविसरेण राउत्तराजेन बन्धकं कृत्वा शुनकस्य पानीयं दत्तम्। ही ही ही बडउलीग्रामीणस्य झगडगसारस्य ठक्कश्रेष्ठिनो लेखसंपुटिका प्रवाहपतिता। चमरसेनविहारवासिना तेन वन्दिना व्यसनाकरेण निर्दारितं पट्टशाटकम्। तदेतैर्दुर्विदग्धैर्भण्डितास्मि। भणितं च केनापि—

'दुष्टभुजंगो यो निजगृहे लज्जितो दुष्टस्नेहो यो दानविवर्जितः।
स कुरूपो यो हृदये न रोचते प्रस्तरकठिनो यो निष्ठुरं वदति ॥')

(नेपथ्ये !)

वामागमाचारविदां वरिष्ठः परापकारव्यसनैकनिष्ठः।
अयं स वेदार्थपथप्रतीपः सभासलिः कौलकुलप्रदीपः ॥ १३ ॥

औषध की पेटी को चूहों ने काट डाला। 'टिक्कडउवाल' गाँव के मुखिया 'कुलव्याधि' नामक ब्रह्मचारी ने गिरवी में रक्खी हुई धोती को फिर से लेने का आग्रह नहीं किया। निःसंतान ग्राम के सरोवर के राजहंस, राउत्तराज संग्राम विसर ने कुत्ते को बंधक में रखकर मानो पानी दे दिया (जलाञ्जलि दे दी)। ही ही ही ! 'बडउली' ग्राम का निवासी झगड़े को ही सार समझने वाले 'ठक्क' नामक सेठजी की रोजनामचा की बही (लेखसंपुटिका) मानों नदी की धारा में बह गई। चमरसेन विहार के रहने वाले बंदी व्यसनाकर ने दुपट्टा को मानों फाड़ ही डाला। इस प्रकार मैं इन धूर्तों से भाड़ी (भंडित) गई हूँ। किसी ने कहा भी है:—

जो अपने घर में लज्जा करने वाला है वही दुष्ट भुजंग है, जो दान से रहित है वही दुष्ट स्नेह वाला है, जो हृदय को नहीं जचता (पसंद आता है) वही कुरूप है और जो निष्ठुर (वचन) बोलता है वही पत्थर से भी कठोर है ॥ १२ ॥

(नेपथ्य में)

वाम (=वाममार्ग) आगम (=तन्त्रशास्त्र) के आचार को जानने वालों में (अर्थात् वाममार्गियों के तन्त्रशास्त्र के व्यवहार करने वालों में)

(पुनर्नेपथ्ये सहासम्)

वटुः—अये, आश्चर्यमाश्चर्यम्। इदानीं कुट्टनीभवनमलंक्रियते महामहोपाध्यायेन दाम्भिकचक्रवर्तिना महाहवपालिना निन्दितवनमालिना तिमिराकुलनयनेनापि परदोषदर्शिना सभासलिना।

(ततः प्रविशति कुल व्याधिवटुकेनानुगम्यमानः सभासलिः।)

सभासलिः—भो भोः कुलव्याधे, क्व सा दन्तुरा कुट्टनी।

कुलव्याधिः—एसा सा वसीकरणमन्तं जवन्ती भुजंगमग्गं मग्गअन्ती वट्टदि। (एषा सा वशीकरणमन्त्रं जपन्ती भुजंगमार्गं मार्गयमाणा वर्तते।)

वरिष्ठ, दूसरे का अपकार करने की आदत में एकनिष्ठ, वेदार्थ के पथ (मार्ग) के प्रतिकूल, कौलों (वाममार्गियों) के कुल में उजाला करने वाले वही सभासलि जी तो हैं[1] ॥ १३ ॥

(पुनः नेपथ्य में हँसी के साथ)

वटु—अरे, आश्चर्य है, आश्चर्य है। गुरुघंटाल, घमंडियों के सरदार, महाहवपालि,[2] निन्दितवनमाली, रतौंधी (तिमिर) रोग से आकुल नेत्र-वाले होकर भी दूसरे के दुर्गुण पर नजर डाले हुए सभासलि इस समय कुटनी के भवन को सुशोभित कर रहे हैं।

(इसके बाद कुलव्याधि नामक वटु के साथ सभासलि का प्रवेश होता है।)

सभासलि—अजी कुलव्याधे, वह दन्तुरा कुटनी कहाँ है?

कुलव्याधि—यही है वह, जो वशीकरण मंत्र का जप करती हुई भुजंगों[3] की राह की तलाश में लगी हुई है।

---

१. इस श्लोक में वाम=वेदविहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तांत्रिक मत, जिसमें मद्य, मांस, व्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है। वामागमाचार = तांत्रिक मत का एक भेद जिसमें पंचमकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य (मछली), मुद्रा और मैथुन द्वारा उपास्यदेव की पूजा की जाती है। इस मतवाले स्वमतावलंबी को वीर, साधक आदि और विरोधी को कंटक कहते हैं। यही यहाँ 'वामागमाचार' शब्द से कहा गया है।

२. महाहवपालि=अग्निहोत्री। निन्दितवनमालि=विष्णु या कृष्ण भक्तों का निन्दक।

३. भुजंग=आधुनिक भाँड जो वेश्याओं के यहाँ रहते हैं।

सभासलिः—(तामवलोक्य स्वगतम्)

अन्तर्निमग्नं नयनद्वयेन क्वचित्प्रयातं नवयौवनेन ।
भग्नौ कपोलौ पतितं कुचाभ्यां मन्ये भयान्मन्मथसायकानाम् ॥१४॥

किंच ।

भुजंगदंशव्यसनाकुलाया दन्ता बहिर्गा इव दन्तुरायाः ।
बन्धानुसंधानपरा यदीया पाशोपमा वल्गति कर्णपाली ॥ १५ ॥

(प्रकाशमुपसृत्य कर्णौ स्पृष्ट्वा सहासं वामपाणिना ।) अहमभिवादये ।

दन्तुरा—मअणमञ्जरी दे पसीददु । एदं भद्दासणम् । उपविसदु उवज्झाओ । (मदनमञ्जरी ते प्रसीदतु । एतद्भद्रासनम् । उपविशतूपाध्यायः ।)

सभासलिः—(उपविश्य) अये, दूरत एवास्माभिराकर्णिता वसन्तगीतिः । तत्क सा मदनमञ्जरी ।

सभासलि—(उसे देखकर मन ही-मन) मैं मानता हूँ कि कामदेव के बाणों के भय से ही दोनों आँखें भीतर धँस गई हैं, नवयौवन कहीं भाग गया, दोनों गाल पोपले हो गए और दोनों स्तन लटक आए हैं ॥ १४ ॥

और भी :—

धूर्तों के दाँत गड़े रहने की आफत से व्याकुल दन्तुरा के दाँत मानों बाहर निकल (निपुर) आए हैं । जिसके कान की बाली, फँसाने की खोज में लगे पाश (फंदे) की भाँति हिलती रहती है ॥ १५ ॥ ,

(प्रकाश में जाकर हँसते हुए बाएँ हाथ से दोनों कानों को स्पर्श करके) मैं प्रणाम करता हूँ ।

दन्तुरा—मदनमंजरी तुम पर प्रसन्न रहे । यह भद्रासन है । गुरुजी बैठ जाइए ।

सभासलि—(बैठकर) अरे, हमने दूर से ही वसन्तकालीन गीत को सुना है । अतः वह मदनमंजरी कहाँ है ?

कुलव्याधिः—उवज्झाअ, जइ तुह चरिअं कलहप्पिआ जाणिस्सदि, ता तुम्हेहिं किं कादव्वम् । (उपाध्याय, यदि तव चरितं कलहप्रिया ज्ञास्यति, तदा युष्माभिः किं कर्तव्यम् ।) अस्माभिः

दन्तुरा—(सहासम् ।) एदाणं कलहप्पिआ णाम पणइणी । (एतेषां कलहप्रिया नाम प्रणयिनी ।)

कुलव्याधिः—(सोल्लासम् ।) अह किम् । (अथ किम् ।)

दन्तुरा—मअणमञ्जरि, इदो इदो । (मदनमञ्जरी, इत इतः ।)

मदनमञ्जरी—(उपसृत्य ।) अम्ब, को एसो । (अम्ब, क एषः ।)

दन्तुरा—सो एसो सहासलि णाम उवज्झाओ जस्स कलहप्पिआ णाम घरिणी । (स एष सभासलिर्नामोपाध्यायो यस्य कलहप्रिया नाम गृहिणी ।)

सभासलिः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य ।) अये, रोषोऽपि लीलावतीनां चित्तमुन्मादयति । तथा हि ।

आनन्दकारि मदनज्वरदर्पहारि पीयूषपङ्कपरिहासरसानुकारि ।
प्रेमप्रसारि परमाभ्युदयानुकारि वामभ्रुवामहह किं न मनोविकारि।१६।

कुलव्याधि—उपाध्याय, यदि कलहप्रिया तुम्हारे चरित्र को जान जायगी, तब हम लोग क्या करेंगे ?

दन्तुरा—(हँसी के साथ) कलहप्रिया तो इनकी पत्नी का नाम है ।

कुलव्याधि—(उल्लास के साथ) इससे क्या ?

दन्तुरा—मदनमंजरी, इधर से, इधर से ।

मदनमंजरी—(समीप जाकर) माँ, ये कौन हैं ?

दन्तुरा—यह वही सभासलि नामक उपाध्याय (गुरुजी) हैं, जिनकी कलहप्रिया नाम की पत्नी है ।

सभासलि—(मदनमंजरी की ओर देखकर) अरे, लीलावतियों[1] का कोप भी चित्त को उन्मत्त कर देता है । क्योंकि :—

आनंद को बढ़ाने वाली, मदन से उत्पन्न ज्वर दर्प को हरने वाली, अमृत-रूपी कीचड़ का मजाक उड़ाने वाले रस का अनुकरण करने वाली, प्रेम को

---

१. लीलावती=जो स्त्री शृंगारचेष्टा को भली-भाँति जानती है ।

दर्वी ladle.
पीठिका seat.

कुलव्याधिः—अये दन्तुरे, अज्ज ज्जेव्व कलहप्पिआए समं एदाणं दसणादसणि णहाणहि करचरणणिव्वन्धभीसणो महाहवो संवुत्तो। तदो दव्वीखण्डेण, तदो अलादखण्डेण, तदो पीढिआए, तदो हण्डिआए एसो उवज्झाओ हणिअ णीसारिदो। (अये दन्तुरे, अद्यैव कलहप्रियया सममेतेषां दशनादशनि नखानखि करचरणनिर्बन्धभीषणो महाहवः संवृत्तः। ततो दर्वीखण्डेण, ततोऽलातखण्डेन, ततः पीठिकया, ततो हण्डिकया, एष उपाध्यायो हत्वा निःसारितः।)

दन्तुरा—(सस्मितम्।) उवज्झाअ, ता कीस ईदिसीणं तुम्हेहिं संगमो विहिदो। (उपाध्याय, तत्किमीदृशीनां युष्माभिः संगमो विहितः।)

सभासलिः—नष्टाग्निश्रोत्रियसुता मच्छरहट्टाग्रामीणा मासोपवासिनी। किं तु राक्षसीवातिप्रगल्भा वृद्धा च। अत एवाहं पतितकुचस्पर्शभीतः प्रबलतरनिर्वेदादत्रायातः।

फैलानेवाली, परम अभ्युदय का अनुकरण करने वाली, अहह! टेढी भौंहों वाली रमणियों की (ये सब चेष्टाएँ) क्या मन को विकृत करने वाली नहीं होतीं? (अर्थात् स्त्रियों का सब कुछ मन को विकृत करने वाला होता है) ॥१६॥

कुलव्याधि—अरी दन्तुरे, आज ही कलहप्रिया के साथ इनकी दाँत-कटौवल, नख-नुचौवल और हाथापाई के साथ (हाथ-पैर के प्रयोग में मुक्त होकर) भयंकर लड़ाई हुई थी। बाद में कलछुल से, जलती लकड़ी (लुआठी) से, पीढ़े से, फिर हाँडी से मार खाकर ये गुरु निकाल बाहर कर दिए गए। पीढ़ी? Guj. [illegible]

दन्तुरा—(मंद मुसकुराहट के साथ) गुरुजी, तब क्यों आपने ऐसी स्त्री का साथ किया?

सभासलि—मच्छरहटा गाँव की निवासिनी, पूरे मास तक उपवास रखने वाली उस अग्निहोत्री वेदपाठी की लौंडिया का नाश हो जाय। किन्तु वह राक्षसी की तरह जबरदस्त (ढीठ) और बुड्ढी है। इसीलिये तो उसके ढले हुए कुच के स्पर्श से भयभीत होकर मैं प्रबल वैराग्य के कारण यहाँ आया हूँ।

दन्तुरा—जुत्तमिदं तुम्हाणं महापण्डिआणम् । (युक्तमिदं युष्माकं महापण्डितानाम् ।)

मदनमञ्जरी—(सोद्वेगं संस्कृतमाश्रित्य ।)

आयास्यति भवतोऽयं विनयमयस्तादृगनुरागः ।
हृदयस्थितमालेव मालेयं गगनकुसुमानाम् ॥ १७ ॥

सभासलिः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य ।)

हठाक्रान्तं नीलोत्पलदलविशालालसदृशः
त्रिधा मध्यं बद्धं वलिभिरवलं वीक्ष्य विधिना ।
प्रबन्धः कोऽप्यस्याः स्तनकलशयोश्चारुरचना
नितम्बप्राग्भारादलसगमनः क्लेशशमनः ॥ १८ ॥

दन्तुरा—आप जैसे महापंडित (महापात्र) के लिये यह अच्छा ही हुआ ।

मदनमंजरी—(उद्वेग के साथ संस्कृत का आश्रय लेकर)

आपका यह विनययुक्त अनुराग ठीक उसी कोटि में आयगा जैसे वन्ध्या-पुत्र के हृदय में स्थिर आकाश-कुसुम की माला । (अर्थात् बांझ औरत को पुत्र और फिर उस पुत्र के हृदय में आकाश-कुसुम की माला का होना, एकदम असंभव बातें हैं, ठीक वैसे ही आपका यह अनुराग है) ॥ १७ ॥

सभासलि—(मदनमंजरी की ओर देखकर)

नीले कमल के पत्ते की भाँति विशाल तथा अलसाई आँखों वाली (इस युवती) की सहसा दबी हुई कमजोर कमर (मध्यभाग) को देखकर ही विधाता ने त्रिवलियों से तेहरा बाँध दिया है । इस रमणी के कलशों की भाँति स्तनों की सुन्दर रचना तथा नितम्ब के निचले भाग के भार से आलस-भरा क्लेश को शमन करने वाला गमन, यह भी कोई (ब्रह्मा का) अनिर्वचनीय ही प्रबन्ध (दृढ़बंधन या प्रयोग) है ॥ १८ ॥

अपि च ।

हर्षोत्फुल्लकपोलया स्तनभरव्यालोलया बालया
हेमाम्भोरुहवक्त्रया दरदलन्नेत्रोत्पलप्रान्तया ।
दृष्टश्चेदनया कुपत्रविषमैः संधानबन्धाकुलैः
किं न स्यान्मदनोऽपि पुङ्खितशरैर्व्यावृत्त्य लक्ष्यीकृतः ॥१६॥

(दन्तुरामवलोक्य ।) अये, कुतो जङ्घाव्रणव्याकुलिता भवती ।

दन्तुरा—संगामविसरेण राउत्तराएण वन्धए सुणओ दिण्णो । तेण हं भक्खिदम्हि । (संग्रामविसरेण राउत्तराजेन बन्धके शुनको दत्तः । तेनाहं भक्षितास्मि ।

सभासलिः—कुलव्याधे, समाहूयतां जन्तुकेतुनामा महावैद्यः ।

कुलव्याधिः—(जन्तुकेतुमाहूय ।) इमाए गहिरणाहीवणाणं विसमो उवआरो । (एतस्या गभीरनाभिव्रणानां विषम उपचारः ।)

दन्तुरा—उवज्झाअ, किं मं विडम्वेदि एसो । (उपाध्याय, किं मां विडम्बयत्येषः ।)

और भी :—

जिसका कपोल हर्ष से खिल उठा है, स्वर्णकमल की भाँति जिसका मुखमंडल है, जिसका कमल के समान नेत्र भाग जरा-सा उभरा हुआ है, तथा स्तन के बोझ से जो हिल-डोल रही है ऐसी इस बाला के द्वारा कदाचित् मदन भी देख लिया जाय तो टेढे पत्र के कारण विषम एवं लक्ष्य के विचलित होने से लौटे हुए पुंखित बाणों से क्या निशाना न बन जायगा (अर्थात् बन जायगा)॥१६॥

(दन्तुरा की ओर देखकर) अरे, आप जाँघ के घाव से छटपटा क्यों रही हैं ?

दन्तुरा—राउत्तराज संग्रामविसर ने बंधक में कुत्ता दिया है। उसने ही मुझे काट खाया है ।

सभासलि—कुलव्याधे, जन्तुकेतु नामक वैद्यराज को बुलाओ ।

कुलव्याधि—(जन्तुकेतु को बुलाकर) इसकी गहरी नाभि के घाव का उपचार कठिन है ।

दन्तुरा—उपाध्याय, यह मुझे क्यों चिढ़ा रहा है ?

सभासलिः—अयमविदितः किं भवत्या ।

अविलम्बकूपझम्पः कटुरटिताकुलितदिङ्मुखो मुखरः ।
कुत्सितकरणग्रामः कुधियामवधिः कुलव्याधिः ॥ २० ॥

कुलव्याधिः—भो उवज्झाअ, एआरिसो को वि विज्जो वाहिवन्धओ ।
(भो उपाध्याय, एतादृशः कोऽपि वैद्यो व्याधिवन्धकः ।)

सभाखलिः—नाकर्णितानि भवता जन्तुकेतोरनिवारितप्रसराण्युपचारवचनानि । तथा हि ।

उत्काशे कण्ठदाहः प्रचुरघृतपयःपानमामज्वरार्ते
रक्ताकृष्टिः कृशानामुदरभयहरा कर्कटी सक्तुमिश्रा ।
पथ्या पथ्यातिसारे दृशि सरुजि पुनः क्षारचूर्णप्रयोग-
स्तत्तन्मिथ्योपचारैस्तरुणयति यमाडम्बरं जन्तुकेतुः ॥ २१ ॥

सभासलि—क्या इसे आप नहीं जानतीं ?

शीघ्र ही कुएँ में कूद पड़ने वाला, वारवार खरी-खोटी सुनाकर दिशाओं को भी आकुलित कर देनेवाला, वकवादी, जिसकी समस्त इन्द्रियाँ कुत्सित हैं ऐसा यह वेवकूफों की सीमारूप कुलव्याधि (कुल के लिए व्याधिस्वरूप) है ॥

कुलव्याधि—अजी गुरुजी, व्याधि को बांधनेवाला ऐसा कोई वैद्य भी है ?

सभासलि—क्या तुमने जन्तुकेतु के इलाज के वारे में दूर-दूर तक फैली बातों को नहीं सुना ? क्योंकि :—

खाँसी (उत्काश) में कंठ में दाग दे, आमज्वर (अजीर्ण के कारण होनेवाले रोग) से पीड़ित को खूब घी-दूध पिलावे, कमजोर के (शरीर से) खून निकाल ले, पेट की खराबी वाले को सत्तू मिली हुई ककड़ी खिलावे, जो पेट के भय को दूर करनेवाली है, अतिसार (संग्रहणी) में विपरीत पथ्य दे, आँख के रोग में नमक के चूर्ण का प्रयोग करे, इस प्रकार के इन-इन झूठे उपचारों द्वारा जन्तुकेतु वैद्य जमराज का आडम्बर ही बढ़ाता है (अर्थात् मृत्यु को बढ़ावा देता है) ॥ २१ ॥

जन्तुकेतुः—(प्रविश्य ।)

व्याधयो मदुपचारलालिता मत्प्रयुक्तममृतं विषं भवेत् ।
किं यमेन सरुजां किमौषधैर्जीवहर्तरि पुरःस्थिते मयि ॥ २२ ॥

दन्तुरा—महावेज्ज, मश्रणमञ्जरीए गले मीणकण्टअं लग्गिअं वट्टदि । तत्थ किं करीअदु । (महावैद्य, मदनमञ्जर्या गले मीनकण्टकं लग्नं वर्तते । तत्र किं क्रियते ।)

जन्तुकेतुः—(सगर्वम् ।) दृष्टप्रत्ययस्तावदुपचारः । पूर्वमुष्ट्रस्य गले कर्कटी लग्नासीत् । तत्रास्मत्पित्रा कुटुम्बकेतुना निरक्षरेणोष्ट्रस्य मुखं बन्धयित्वा दृढतररज्जुभिराकृष्टम् । ततस्तन्मुखाद्विगलिता कर्कटी । तदेतस्या अपि मुखं बन्धयित्वा किमिति नाकृष्यते ।

(ततस्तस्या हसन्त्या मुखाद्विगलितं मीनकण्टकम्)

(ततः सगर्वम्)

जन्तुकेतु—(प्रवेश कर)

व्याधियाँ मेरे उपचार से परिपुष्ट होती हैं, मेरे द्वारा प्रयोग किया हुआ
१ अमृत भी विष हो जाता है । तब मुझे प्राणहर्ता के सामने रहने पर रोगियों को यम और औषध की क्या आवश्यकता ॥ २२ ॥

दन्तुरा—वैद्यराज, मदनमंजरी के गले में मछली का काँटा अटक गया है । उसमें क्या करेंगे ?

जन्तुकेतु—(गर्व के साथ) उपचार तो आजमाया हुआ है (अर्थात् उपचार ऐसा है जिस पर अपना भरोसा है) । पहले एक ऊँट के गले में ककड़ी फँस गई थी । उसमें निरक्षर भट्टाचार्य मेरे पिता कुटुम्बकेतु (कुटुम्ब परिवार के लिये केतुस्वरूप) ने ऊँट के मुख को बाँधकर मजबूत रस्सी से खींचा था । तब कहीं जाकर उसके मुख से ककड़ी बाहर निकली । तो इसलिये इसका भी मुँह बाँधकर क्या नहीं निकलेगा ?

(इसपर हँस पड़ने से उसके मुख से मछली का कांटा बाहर हो गया)

(लटुकरात गर्व के साथ)

जन्तुकेतुः—अवधार्यतामस्मदुपचारचातुर्यम् ।

सभासलिः—जन्तुकेतो, महाप्रयत्नेन क्रियतामस्या उपचारः ।

जन्तुकेतुः—अस्मादनुष्ठिताया अस्या गुह्यागारेऽपि भविष्यति विशेषः ।

सभासलिः—निवेद्यतां तदुपचारः ।

जन्तुकेतुः—श्रूयतां चरकमतम्—

यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पेपयेत् ।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति ।। २३ ।।

सभासलिः—अद्येह हट्टे रोदनकलकलः संवृत्तः । तत्तत्र किं भवदुपचारः संजातः ।

जन्तुकेतुः—नहि नहि । भवद्भिरेव यदि तत्र स्वस्त्ययनं कृतं स्यात् ।

सभासलिः—नहि नहि ।

जन्तुकेतु—हमारे उपचार के कौशल को मानिए ।

सभासलि—जन्तुकेतो ! महान् प्रयत्न से इसका (दन्तुरा का) उपचार करें ।

जन्तुकेतु—इससे (उपचार से) अनुष्ठित होने पर इसके गुप्तेन्द्रिय में भी कुछ वैचित्र्य हो जायगा ।

सभासलि—वह उपचार निवेदन कीजिए ।

जन्तुकेतु—सुनिए, 'चरक' के मत को ।

जिस किसी पेड़ की जड़ को, जिस किसी भी वस्तु के साथ पीसकर जिस किसी रोगी को दे देना चाहिए । फल जैसा-तैसा होकर रहेगा ।। २३ ।।

सभासलि—आज इस बाजार में रोने का कोलाहल शुरू हो गया था । तब वहाँ आपका कौन-सा उपचार हुआ ?

जन्तुकेतु—नहीं, नहीं । शायद आप ही के द्वारा वहाँ 'स्वस्तिपाठ' किया गया हो ।

सभासलि—नहीं, नहीं ।

कुलव्याधिः—अज्ज, जइ तुम्हे दुवे वि तत्थ ण गदा, ता किं वज्जेण मारिदो वणिअतणओ। (आर्य, यदि युवां द्वावपि तत्र न गतौ, तत्किं वज्रेण मारितो वणिक्तनयः।)

जन्तुकेतुः—अहो दुर्दैवमस्माकम्। निर्व्याधयः सकलनगरप्राणिनः। (दीर्घं निःश्वय।) अहो धिग्व्यवहारं वर्बरपुरस्य, यद्वैद्य एव मृतकखट्वा-मुद्वहति। अत एवास्माभिरुद्वहनभारभयाद् गजवैद्यकमपहाय बालतन्त्रम-भ्यस्तम्। बालस्य हि मृतस्य सुकरमुद्वहनम्। किं च।

श्मश्रुसंचयविध्वंसि ज्वलज्ज्वलनभाजनम्।
नोपसर्पति चेदग्रे मृतं मुञ्चति किं भिषक्॥ २४॥

सभासलिः—अहमप्यभिमतनियमः स्वस्त्ययनार्थं व्रजामि।

जन्तुकेतुः—कीदृशस्ते नियमः।

कुलव्याधि—आर्य, यदि आप दोनों ही वहाँ न गए, तब वह बनिये का लड़का क्या वज्र से मार डाला गया?

जन्तुकेतु—ओह, हम लोगों का दुर्भाग्य है। समस्त नगर के प्राणी रोग से मुक्त हैं। (लंबी सांस भरकर) ओह, जंगलियों के नगर के व्यवहार को धिक्कार है, कि वैद्य ही मृतक की खाट उठाता है। इसीलिए हमने बोझ उठाने के भय से गजवैद्यक छोड़कर बालतन्त्र (बच्चों का टोणा-टोटका) का अभ्यास किया। क्योंकि मृत बच्चे को उठाकर ले जाना सरल है। और भी—

दाढी-मूँछ को नष्ट कर देने वाला, जलता हुआ आग का बर्तन जब तक आगे न आ जाय तब तक क्या वैद्य मरे हुए को छोड़ता है? (अर्थात् जब तक मरे प्राणी के मुख में आग न लगा दी जाय, तब तक वैद्य मृतक को पैसे के लोभ से धरे रहता है)॥ २४॥

सभासलि—मैं भी मनचाहे नियम के वशीभूत होकर ही स्वस्तिपाठ के लिये जाता हूँ।

जन्तुकेतु—आप का नियम कैसा है?

सभासलिः—अघटश्राद्धेऽन्यस्य प्रवेशो न दीयते। अयमेवाभिमतो नियमः सर्वत्र।

दन्तुरा—महावेज्ज, तिमिराउला मे णअणा ण पेक्खन्ति। ता ओसहं भण। (महावैद्य, तिमिराकुले मे नयने न पश्यतः। तदौषधं भण।)

जन्तुकेतुः—

चक्षूरोगे समुत्पन्ने तप्तफालं गुदे न्यसेत्।
तदा नेत्रोद्भवां पीडां मनसापि न संस्मरेत् ॥ २५ ॥

अपि च—

अर्कक्षीरं वटक्षीरं स्नुहीक्षीरं तथैव च।
अञ्जनं तिलमात्रेण पर्वतोऽपि न दृश्यते ॥ २६ ॥

सभासलि—करटक[1]श्राद्ध में दूसरे का प्रवेश नहीं होने देता। सब जगह यही अभिमत नियम है।

दन्तुरा—वैद्यराज, तिमिराकुल मेरी आँखें नहीं देख पा रही हैं। इसलिए कोई दवा बताइये।

जन्तुकेतु—आँख में रोग उत्पन्न होने पर गुदा में तपाई हुई (हलकी) फाल (फावड़ा) को घुसेड़ दे। तब नेत्र में उठी पीड़ा का मन से भी स्मरण न करे ॥ २५ ॥ [मतलब यह है कि तपाया फावड़ा का शरीर से सम्बन्ध होते ही प्राणांत होने की नौबत आ जायगी, तब भला नेत्र की पीड़ा का स्मरण कैसे होगा। ऐसी दशा में 'न मरीज़ रहेगा न मरज़' की कहानी चरितार्थ हो जायगी।]

और भी —

अर्क (आक) के दूध, वट के दूध और उसी तरह सेंहुड़ के दूध के तिलमात्र भी आँख में आँजने (अंजन) से पर्वत भी दिखाई नहीं पड़ता है (अर्थात् उक्त क्रिया से निपट अंधा हो जायगा) ॥ २६ ॥

---

१. करटक श्राद्ध—एकादशाह आदि श्राद्ध का नाम करट या करटक श्राद्ध है। कुछ विद्वान् इसे जीवित श्राद्ध के अन्तर्गत मानकर घटश्राद्ध की संज्ञा देते हैं। अथवा एकोद्दिष्ट श्राद्ध का एक प्रांतीय नाम है।

(दन्तुरां प्रति ।) कियद्दूरं पश्यसि ।

दन्तुरा—वडरुक्खं जाव । (वटवृक्षं यावत् ।)

जन्तुकेतुः—अत्र वटवृक्षोऽप्यस्ति किम् ।

कुलव्याधिः—वेज्जो ज्जेव तिमिराउलो । ता बुड्डिअं उवआरेण । (वैद्य एव तिमिराकुलः । तद्ब्रुडितमुपचारेण ।

जन्तुकेतुः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य ।)

स्तनकलशाभ्यामाभ्याममुना गुरुणा नितम्बबिम्बेन ।
कस्य न मन्मथदीक्षाविधिना विधिना हृतं चेतः ॥ २७ ॥

(परिवृत्य ।) वशीकरणमारणमोहनस्तम्भनोच्चाटनमौषधमनुसरामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

(नेपथ्ये ।)

नष्टश्रुतिर्व्यक्तभुजङ्गसङ्गः संगीतकानन्दविनोदबन्धुः ।
विक्रीतलज्जः स्मरबाणवर्ती जटासुरस्तस्करचक्रवर्ती ॥ २८ ॥

दन्तुरा के प्रति—कितनी दूर देख रही हो ?

दन्तुरा—बरगद के पेड़ तक ।

जन्तुकेतु—यहाँ क्या वट का वृक्ष भी है ?

कुलव्याधि—वैद्य ही तिमिराकुल है । तब तो निदान ही बुड़ गया ।

जन्तुकेतु—(मदनमंजरी की ओर देखकर)

विधाता ने इन स्तन-कलशों के द्वारा, इस गुरु (बोझिल) नितम्ब से, तथा इन मन्मथ की दीक्षा विधि से (भला) किसके चित्त को नहीं हर लिया ।२७॥

(मुड़कर) वशीकरण, मारण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन-परक औषध का अनुसरण करता हूँ । (बाद में निकल जाता है ।)

(नेपथ्य में)

कान के बहिरे, जिनका धूर्तों का साथ व्यक्त है, जो गाने-बजाने के प्रेमी हैं, जिन्होंने अपनी लज्जा बेच डाली है, कामातुर और लुटेरों के सरदार जटासुर हैं ॥ २८ ॥

(ततः प्रविशति जटासुरो नाम दिगम्बरः ।)

दिगम्बरः—अलिहन्त अलिहन्त, अण्णाणरासिणा तवस्सिणा अणवरज्झा मए छेलिआ णिहदा । ता हगे विचालट्ठाणमागदो । (अर्हन्नर्हन्, अज्ञानराशिना तपस्विनानपराद्धा मम च्छागी निहता । तदहं विचारस्थानमागतः ।)

(नेपथ्ये ।)

भस्माङ्गरागाभिमुखः कपाली द्विजिह्वदोषाकरधूर्तमूर्तिः ।
विक्रीतलज्जो रमयन्भुजङ्गानज्ञानराशिः समुपागतोऽयम् ॥ २८ ॥

(प्रविश्य ।)

अज्ञानराशिः—मया सा पुष्पवाटिकायां चरन्ती छागी निहता । तदिदं विचारयतु सभासलिरुपाध्यायः ।

सभासलिः—(सविमर्शं विचार्य ।) यदा ज्ञानपूर्वं छागीवधः कृतस्तदा दातव्यम् । नो चेन्न किमपि ।

(इसके बाद जटासुर नामक दिगम्बर (जैनाचार्य)का प्रवेश होता है)

दिगम्बर—अर्हन् ! अर्हन् !! तपस्वी अज्ञानराशि ने मेरी निरपराध छागी को मार डाला है । इसी से मैं विचार-स्थान (न्यायालय) में आया हूँ ।

(नेपथ्य में)

शरीर में भस्म लगाए, कपाल धारण करने वाले, दोगले, दोष की खान, पक्के दगाबाज (धूर्त मूर्ति), ये निर्लज्ज, अज्ञानराशि भुजंगों (अपने यारों) को आनंदित करते हुए आ गए ॥ २८ ॥

(प्रवेश कर)

अज्ञानराशि—फुलवारी में चरती हुई छागी को मैंने मारा है । इसलिए उसका सभासलि उपाध्याय विचार करें ।

सभासलि —(तर्क-वितर्क के साथ विचार कर) यदि ज्ञानपूर्वक (जानकारी में) छागी का वध किया गया है, तब तो मूल्य देना चाहिए । यदि नहीं, तो कुछ भी नहीं ।

अज्ञानराशिः—(सरभसम् ।) मया छागीति न निहता, किं तु वत्सकीति ज्ञातम् ।

सभासलिः—तर्हि जितमज्ञानराशिना । तद्गृहाण जयपत्रम् ।

तपस्विनामुना सत्यं जितमज्ञानराशिना ।
जटानां कुलटानां च यत्रैकत्र समागमः ॥ ३० ॥

अज्ञानराशिः—(सक्रोधम् ।) अये, मामुपहसत्युपाध्यायः । अहह, ब्राह्मण्यं विनापि परमप्रतिष्ठाप्रकर्षस्ते । रे रे ।

विशालतिलकारम्भ दम्भक्षोभकलानिधे ।
राजवेश्मसरःकङ्क रङ्क केनोपमीयसे ॥ ३१ ॥

सभासलिः—(सकोपम् ।)

कौपीनवानपि जटापटलाकुलोऽपि
भालस्थलस्खलितभस्मकणारुणाक्षः ।
उन्मादबन्धुरुपनीय गलेऽक्षमाला-
मुन्माष्टि वारवनिता जघनं जघन्यः ॥ ३२ ॥

अज्ञानराशि—(शीघ्रतापूर्वक) मैंने 'छागी' ऐसा जानकर नहीं मारा, किन्तु बछिया समझा था ।

सभासलि—तब तो अज्ञानराशि की जीत हुई । अतः जयपत्र ग्रहण कीजिए ।

जहाँ जटावालों (जटासुर आदि) का और कुलटाओं (दन्तुरा आदि) का एक जगह समागम हुआ है, वहाँ अवश्य ही इस तपस्वी अज्ञानराशि की विजय हुई ॥ ३० ॥

अज्ञानराशि—(क्रोध के साथ) अरे, उपाध्याय मेरा उपहास करता है । अहह ! ब्राह्मणत्व के बिना भी तेरी बड़ी प्रतिष्ठा हुई ।

रे, रे,

विशाल तिलक लगाने वाले, दम्भ और क्षोभ की कला की खान, राजघराने रूपी सरोवर के बगुले, रंक ! तुम्हारी किससे उपमा दी जाय ॥ ३१ ॥

सभासलि—(कोप के साथ)

तुम लंगोट पहने हो, जटाधारी भी हो, ललाट से झरे भस्म-कण के

दन्तुरा—तुम्हेहिं लज्जा कत्थ विक्किणिदा। (युष्माभिर्लज्जा कुत्र विक्रीता।)

सभासलिः—अद्यैव हट्टे महाजनपुरतः सुशीलादेव्या सुवर्णदाम्ना क्रीता।

अज्ञानराशिः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य।)

नेत्रानन्दभुवः प्रमोदवसतेरस्याः कुरङ्गीदृश-
स्तन्वङ्ग्याः स्तनशैलमूलविलसन्मुक्तालतापाशितः।
विस्तीर्णे जघनस्थलीपरिसरे व्यामोहलीलाभर-
भ्रान्त स्वान्तकुरङ्ग यास्यसि कुतः पञ्चेषुबाणार्दितः॥३३॥
दुर्दैवादवधीरिता रतिपतेरानन्दकन्दस्थली
प्राप्ता कल्पलता कथं कथमपि स्थानान्तरे विस्मृता।
विज्ञाता न मया जडेन पुलकैरावेदिता विह्वला
नेत्रापाङ्गतरङ्गभङ्गिमकलालीलानिधिः प्रेयसी॥ ३४॥

(आँखों में पड़ने के) कारण तुम्हारे नेत्र लाल हैं, उन्माद के सहोदर हो, गले में रुद्राक्ष की माला धारण करके तुम जघन्य वेश्या की जाँघ को मसलते हो॥ ३२॥

दन्तुरा—आप लोगों ने लज्जा कहाँ बेच दी है?

सभासलि—आज ही तो बाजार में महाजनपुर से (आकर) सुशीला ? देवी ने सोने के हार के द्वारा खरीद ली है।

अज्ञानराशि—(मदनमंजरी की ओर देखकर)

नेत्र के आनंद के स्थान, हर्ष के घर, इस मृगनयनी तन्वंगी के स्तनरूपी शैल की तलहटी में रंग-रेलियाँ करते हुए मोती के हार में फँसे तथा विस्तृत जघनस्थली के परिसर (आभोग) में मोह-लीला के भार से भ्रान्त, ऐ मनरूपी मृग, कामदेव के बाण से घायल होकर कहाँ जायगा॥ ३३॥

(घूमकर)

मैंने कामदेव की क्रीडाभूमि का दुर्भाग्यवश तिरस्कार किया (छोड़ दिया)

(प्रविश्य ।)

मिथ्याराशिः—भो भो, सअलतवस्सिणीमुहमण्डणाए तुम्हाणं तव-स्सिणीए पसववेअणा वट्टदि । ता आगच्छध । (भो भोः, सकलतपस्विनी-मुखमण्डनया युष्माकं तपस्विन्याः प्रसववेदना वर्तते तदागच्छत ।)

अज्ञानराशिः—(अतिरभसाद्भस्म विकिरन् ।) तत्प्रसवकुशला काचिद-न्विष्यताम् ।

सभासलिः—वयमेव प्रसवकर्मणि निपुणाः ।

(ततः प्रविशति पुत्रहस्ता तपस्विनी ।)

सभासलिः—(परिवृत्यावलोक्य च ।) अहो भस्माङ्कुरस्य रमणीयता । किं च ।

आदन्तजननात्सद्य आ चूडान्नैशिकी क्रिया ।
त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ ३५ ॥

और किसी-किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से प्राप्त कल्पलता को अन्य स्थान में खो दिया । नेत्रों के अपांग की तरंग-भंगिमा (नजाकत, मटकाने) की चतुराई की क्रीडाओं की खान, (और) रोमांच के द्वारा (अपनी दशा को) सूचित करने वाली, व्याकुल प्रेमिका को मुझ जड़ ने नहीं समझा ॥ ३४ ॥

(प्रवेशकर)

मिथ्याराशि—भो, भो, समस्त तपस्विनियों में प्रमुख, हमारी तपस्विनी को प्रसववेदना हो रही है, इसलिए (आप लोग) चलें ।

अज्ञानराशि—(बड़ी तेजी से भस्म बिखेरता हुआ) तब तो प्रसव (बच्चा जनाने) में कुशल किसी स्त्री की खोज कीजिए ।

सभासलि—हम सब ही प्रसव-क्रिया में निपुण हैं ।

(इसके बाद हाथ में लड़के को लिए तपस्विनी प्रवेश करती है)

सभासलि—(घूमकर और देखकर) वाह ! यह भस्मांकुर की खूबी (रमणीयता) है । और भी—

(बालक के मरण का अशौच) दांत निकलने से पूर्व तत्क्षण, चूड़ा-करण संस्कार से पूर्व का (अशौच) एक रात तक, व्रतादेश (= उपनयन

दिगम्बरः—दन्तुले, हगे कामाउले मअणमञ्जरीणिमित्तं आगदे। ता गेण्हदु भोदी अप्पमलेण सुवण्णघडिदं अलिहन्तम्। (दन्तुरे, अहं कामाकुलो मदनमञ्जरीनिमित्तमागतः। तद्गृह्णातु भवती अल्पमूल्येन सुवर्ण-घटितमर्हन्तम्।)

दन्तुरा—(तपस्विनं प्रति।) भो भुअङ्गराअ, तुम्हेहिं जडासुरो व-सीकरणमन्तं सिक्खविदो। (भो भुजंगराज, युष्माभिर्जटासुरो वशीकरण-मन्त्रं शिक्षितः।)

अज्ञानराशिः—मयैव वात्सल्यादुच्चाटनमोहनमारणरण्डावशीकरण-मन्त्रा अस्मै प्रदत्ताः।

जटासुरः—तेहिं जेव्व मन्तेहिं हगे धम्मचलणसीलाए कुट्टणीरक्ख-सीएमुहकन्दरे पडिदो (तैरेव मन्त्रैरहं धर्मचरणशीलायाः कुट्टनीराक्षस्या मुख-कन्दरे पतितः)।

दन्तुरा—विमणा मअणमञ्जरी। ता जो एत्थ कुरूवो मलपङ्कमि-स्सिदो सो णीसारीअदु (विमना मदनमञ्जरी। तद्योऽत्र कुरूपो मलपङ्क-मिश्रितः स निःसार्यताम्)।

संस्कार में ब्रह्मचार्यादि व्रतों के उपदेश) के पूर्व की तीन रात तक इसके बाद दस रात्रि का (अशौच) लगता है ॥ ३५ ॥

(मुड़कर)

दिगम्बर—दन्तुरे, मैं कामाकुल होकर मदनमंजरी के निमित्त आया हूँ। इसलिए आप अल्पमूल्य में ही (बहुमूल्य) सुवर्णनिर्मित अर्हत् (मूर्ति) को ग्रहण करें।

दन्तुरा—(तपस्वी के प्रति) अजी भुजंगराज, आप लोगों ने जटासुर को वशीकरण मंत्र की शिक्षा दी है।

अज्ञानराशि—मैंने ही वात्सल्यभाव से उच्चाटन, मोहन, मारण, रण्डा-वशीकरण मंत्रों को इसे प्रदान किया है।

जटासुर—उन्हीं मंत्रों के द्वारा मैं धर्मचरणशीला कुट्टनी, राक्षसी के मुखरूपी कंदरा में गिर गया था।

दन्तुरा—मदनमंजरी उदास है। इसलिए जो यहाँ कुरूप तथा मलपंक से मिश्रित है उसे निकाल बाहर करो।

जटासुरः—(सरभसं लगुडमादाय ।) मए जेव्व णीसारिदव्वा सव्वे । (मयैव निःसारयितव्याः सर्वे) ।

सभासलिः—तदयं मुष्टिलगुडन्यायः । (पुरोऽवलोक्य ।) अहो पाण्डित्यम् ।

पुनस्त्रिदण्डः पुनरेकदण्डः पुनःपुनर्वञ्चकतामुपेतः ।
तपस्वितामेत्य जटासुरोऽयं नग्नोऽभवद्वञ्चकचक्रवर्ती ॥३६॥

(पुनरवलोक्य ।) युक्तमुक्तं केनापि ।

उभावप्यश्रुतग्रन्थावुभावपि जडात्मकौ ।
अहो मोहस्य माहात्म्यं यदेकः शिष्यतां गतः ॥ ३७ ॥

(प्राचीमवलोक्य ।) अये, शशाङ्ककरनिकरनिवारिततिमिरमनोहरा दिशः । तथा हि ।

जटासुर—(तेजी से लाठी लेकर) मैं ही सबको निकाल बाहर करता हूँ।

सभासलि—इसीलिए तो यह मुष्टिलगुड न्याय है। (आगे की ओर देखकर) वाह रे विद्वत्ता !

पुनः त्रिदण्डी (रामानुजाचार्य के मतावलंबी), फिर एकदण्डी (शंकराचार्य के मतानुयायी), यह बार-बार वंचकता को धारण करनेवाला, तपस्वी होकर भी ठगसम्राट् जटासुर नंगा (दिगम्बर) हो गया है ॥ ३६ ॥

(फिर से देखकर) किसी ने ठीक ही कहा है।

दोनों में से किसी ने ग्रन्थ का नाम भी नहीं सुना तथा दोनों जड़ प्रकृति के हैं। अहो, यदि (इन दोनों में) एक ने शिष्यत्व स्वीकार कर ही लिया, तो यह सब मोह का माहात्म्य है (अर्थात् यह सब अज्ञान की महिमा ही समझिए) ॥ ३७ ॥

(पूर्व दिशा की ओर देखकर) अरे, चन्द्रमा की किरणों ने अन्धकार दूर कर दिया है, जिससे दिशाएँ मनोहर लग रही हैं। और भी :—

एष स्वर्गतरङ्गिणीजलमिलद्दिग्दन्तिदन्तद्युती
राजद्राजतकुम्भविभ्रमधरः शीतांशुरभ्युद्गतः ।
हंसीयत्यमलाम्बुजीयति लसड्डिण्डीरपिण्डीयति
स्फारस्फाटिककुण्डलीयति दृशामानन्दकन्दीयति ॥३८॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

लज्जाविक्रयो नाम प्रथमोऽङ्कः ।

स्वर्ग-गंगा के जल से मिलता—जुलता दिग्गजों के दांत की भाँति जिसकी चमक है, शोभित होते हुए चाँदी के घड़े की भ्रांति वाला यह चन्द्रमा उग गया है। जो (क्रमशः) इसकी तरह आचरण कर रहा है, स्वच्छ कमल की भाँति है, चमकते हुए समुद्रफेन (डिंडीर) के पिंड की नाई है, बड़े स्फाटिक कुण्डल की तरह है और आँखों को अत्यधिक आनंद दे रहा है ॥३८॥

(इसके बाद सब चले जाते हैं ।)

॥ लज्जाविक्रय नामक प्रथम अंक समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विश्वासघातकनाम्ना मित्रेणानुगम्यमानो निःसंतानग्रामीणः सङ्ग्रामविसरो नाम राउत्तराजः।)

(संग्रामविसरः सहर्षं कुट्टनीं वामपाणिना प्रणम्योपविशति।)

दन्तुरा—पुत्तअ, चिरं जीव। (पुत्रक, चिरं जीव।)

सङ्ग्रामविसरः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य।)

एतानि तानि हरनेत्रशिखिप्रबन्ध-
दग्धस्मरव्रणविनाशरसायनानि।
केषां न विस्मयकराणि नितम्बिनीनां
विश्वप्रियाणि नयनार्धविलोकितानि ॥ १ ॥

दूसरा अंक

(इसके बाद विश्वासघातक नामक अपने मित्र के साथ निःसंतान गाँव का रहने वाला संग्रामविसर नामक राउत्तराज प्रवेश करता है।)

(संग्रामविसर सहर्ष कुट्टनी (दन्तुरा) को बाँएँ हाथ से प्रणाम करके बैठता है।)

दन्तुरा—पुत्र, दीर्घायु हो!

संग्रामविसर—(मदनमंजरी की ओर देखकर) भला इन नितम्बिनियों की ये लोकप्रिय टेढी चितवनें, जो शंकर के तृतीय नेत्र के अग्नि से दग्ध काम के घाव को दूर करने में रसायनस्वरूप हैं, किसको आश्चर्य में नहीं डाल देती हैं॥ १॥

अहो आश्चर्यम् ।

मुखरं नूपुरयुगलं प्रथयत्यभिसारमायताक्षीणाम् ।
इति निर्मुखयोः स्तनयोर्मध्यं न त्यजति पञ्चशरः ॥ २ ॥

किं च ।

नूनमुन्मादयन्त्येता नपुंसकमपि स्त्रियः ।
यदशान्तकुचोपान्तयातायातपरं मनः ॥ ३ ॥

(प्रविश्य ।)

विश्वासघातकः—(सहर्षम् ।)

उवहसइ पम्हलच्छी लच्छीए गहिरजलहिजलवासम् ।
आलिङ्गणपरिचुम्बणरहिअं गोरीए सोहग्गम् ॥ ४ ॥

(उपहसति पद्मलाक्षी लक्ष्म्या गभीरजलधिजलवासम् ।
आलिङ्गनपरिचुम्बनरहितं गौर्याः सौभाग्यम् ॥)

अहो, आश्चर्य है ।

वड़ी-बड़ी आँखोंवाली स्त्रियों की झनझनाती पायजेब उनके अभिसार को सूचित करती है । इसीलिए कामदेव मुखरहित स्तनों के मध्य भाग को नहीं छोड़ रहा है । (अर्थात् वहाँ छिप रहा है) ॥ २ ॥

और भी—

निःसंदेह ये स्त्रियाँ नपुंसक को भी उन्मत्त कर दे रही हैं, क्योंकि मनः इनके अशान्त कुचों के पास ही आता-जाता रहता है ॥ ३ ॥

(प्रवेशकर)

विश्वासघातक—(सहर्ष)

यह सुन्दर पलकोंवाली रमणी (पद्मलाक्षी) गौरी के आलिंगनपरिचुम्बन से रहित सौभाग्य तथा लक्ष्मी के अथाह समुद्र के जल में निवास का उपहास करती है ॥ ४ ॥

[भावार्थ यह है कि भगवान् शिव के मस्तक पर भगवती गंगा का निवास होने के कारण पार्वती को वास्तविक आलिंगनादि का आनन्द नहीं

सङ्ग्रामविसरः—(दन्तुरां प्रति।) मातः, भुजद्वयोपार्जितं यदस्मदीयं तद्युष्मदीयमेव। किं तु ममाद्य नरपतिपुरतो राजवाहनतुरगप्रार्थनारसिकस्य मदनमञ्जरीदत्तहृदयस्य सङ्ग्रामावसरे विसरः संवृत्तः।

दन्तुरा—जइ सो राआ राअवाहणं पअच्छदि, ता राउत्तराअसङ्गामविसरेण किं कादव्वम्। (यदि स राजा राजवाहनं प्रयच्छति, तदा राउत्तराजसङ्गामविसरेण किं कर्तव्यम्।)

संग्रामविसरः—सङ्ग्रामे तदेवारुह्य पलायनं विधेयम्।

दन्तुरा—राउत्तराअ, जुत्तमिदं तुम्हाणम्। (राउत्तराज, युक्तमिदं युष्माकम्।)

मदनमञ्जरी—(सहर्षम्।) एदेहिं जेव्व चरिदेहिं सअलजुवइवल्लहा तुम्हे। (एतैरेव चरितैः सकलयुवतिवल्लभा यूयम्।)

मिलता है, क्योंकि सजातीय (स्त्री) से लज्जा लगती है। लक्ष्मी के उपहास का कारण यह है कि समुद्र के अथाह जल में रात-दिन रहती है ऐसी दशा में भूतल की रहने वाली इस रमणी से कोई समता नहीं है।]

संग्रामविसर—(दन्तुरा के प्रति) हे माता! इन भुजाओं द्वारा अर्जित जो कुछ हमारा है, वह तो आप ही का है। किन्तु आज राजा के सामने राजवाहन-अश्व की माँग करने में रसिक, और मदनमंजरी को चित्त दे देने वाले मेरा लड़ाई के अवसर पर पलायन (विसर) हो गया।

दन्तुरा—यदि वह राजा राजवाहन को दे देता, तो राउत्तराज संग्रामविसर क्या करते?

संग्रामविसर—संग्राम में उसी पर चढ़ कर भाग जाता।

दन्तुरा—राउत्तराज, आपलोगों के लिए यह उचित है।

मदनमंजरी—(सहर्ष) इन्हीं सब कामों के द्वारा तुम समस्त युवतियों के प्रिय हो।

संग्रामविसरः—(तामालिङ्ग्य ।)

कोऽयं व्याजविधिः पुनः पुनरसौ वक्रा कटाक्षच्छटा
कम्पस्वेदपरिश्रमैरनुपमैरेभिः किमुच्छृङ्खलैः ।
प्रस्तावान्तरजल्पितानि सरला दृष्टिः स्मितं संवृतं
तन्वङ्ग्यास्त्रियुगीणसारममृतं मोक्षः पलालोपमः ।। ५ ।। ✓

(दन्तुरां प्रति ।) तत्कुत्र बन्धकीकृतः सारमेयो मे ।

दन्तुरा—स लोहसंकलं भञ्जिअ मं कम्मोडिअ ण जाणीअदि कहिं गदो । (स लोहशृङ्खलां भङ्क्त्वा मां······न ज्ञायते कुत्र गतः ।)

सङ्ग्रामविसरः—स मया विश्वासघातकपुरत एव टङ्कशतेन क्रीतः । सर्वाखेटकचतुरः पितृवदस्मान्पुष्णाति । अतिदुर्ललिततया जनन्याः क्रोडे स्वपिति । बालकैः सह क्रीडति । चुम्बति मुखाम्बुजानि । तन्मित्र विश्वासघातक, प्रबोधयैनाम् ।

संग्रामविसर—(उसे आलिंगन कर)

अनुपम और अटपटे कम्प, स्वेद, रतिजनित खेद से क्या मतलब, यह कौन सी बहानेबाजी है, बारबार वह कुटिल कटाक्षों की छटा (क्या चीज है), (समागम के) प्रस्ताव में बीच बीच में बकना, सौम्य दृष्टि, मुस्कुराहट, तन्वंगियों की (ये सब चेष्टाएँ) तीनों युगों का सार-स्वरूप अमृत है। (इनके सामने) मुक्ति तो पुआल के समान है ।। ५ ।।

(दन्तुरा के प्रति) तब मेरा बंधक में रखा हुआ कुत्ता कहाँ है ?

दन्तुरा—वह तो लोहे की शृंखला को तोड़कर मुझको नहीं मालूम कहाँ गया ।

संग्रामविसर—मैंने उसे विश्वासघातक के सामने ही सौ 'टंक' में खरीदा है । सब तरह के शिकार में चतुर वह हम सबको पिता की भाँति पालता था । ढीठपने से माताजी के गोद में सोता था । बालकों के साथ खेलता था । मुखकमल को चूमता था । इसलिए मित्र विश्वासघातक, इन्हें समझाओ ।

काट may = Divide
बाँट Hindi

विश्वासघातकः—(कुट्टनीकर्णमुपेत्य ।) इमिणा विक्किणिदेण पञ्च वराडिआ वि ण लहदि । अण्णं अ, मअणमञ्जरिं गेण्हिअ पलाइदुमिच्छेदि । जइ अण्णधा तदा दे पाअजुअलं छिवामि । अह अप्पणो पिअरं वन्धामि (पुनः कर्णमुपेत्य ।) एदस्स सुवण्णकलसो वट्टदि । तं दाव गेण्ह । तुए मए अद्धं अद्धं वण्टिअ गहीअदु । एसो उण णीसारीअदु दुज्जणो । (अनेन विक्रीतेन पञ्च वराटिका अपि न लभ्यन्ते । अन्यच्च, मदनमञ्जरीं गृहीत्वा पलायितुमिच्छति । यद्यन्यथा तदा ते पादयुगलं स्पृशामि । अथात्मनः पितरं बध्नामि । एतस्य सुवर्णकलशो वर्तते । तं तावद् गृहाण । त्वया मयार्धमर्धं विभज्य गृह्यताम् । एष पुनर्निःसार्यतां दुर्जनः ।)

दन्तुरा—जइ ण एआरिसा तुम्हे ता कहं मअणमञ्जरी रत्तिदिवं तुम्ह गुणगणं सुमरदि । (यदि नैतादृशा यूयं तत्कथं मदनमञ्जरी रात्रिंदिनं युष्मद्गुणगणं स्मरति ।)

सङ्ग्रामविसरः—भो भो मित्र विश्वासघातक, निवेदय मम निःसंतानग्रामीणपट्टकम् ।

विश्वासघातकः—तस्स गामस्स वराडिआ जूअसंबन्धेण मए जेव्व गहिदा । अण्णं उण आदाउ णिवेदीअदु (इति पत्रं समर्पयति ।) (तस्य ग्रामस्य वराटिका द्यूतसंबन्धेन मयैव गृहीता । अन्यत्पुनरादाय निवेदयतु ।)

विश्वासघातक—(कुटनी के कान के पास जाकर) इसके बेचने से पाँच कौड़ियाँ भी नहीं मिल सकती । दूसरी बात है कि मदनमंजरी को लेकर भागना चाहता है । यदि ऐसा न हो, तो तुम्हारे पैर छूता हूँ । अनन्तर अपने पिता को बाँधता हूँ । (फिर कान के पास पहुँचकर) इसका सोने का कलश है । तब तक उसे लेलो । हम-तुम आधा-आधा बाँट लें । फिर इस दुष्ट को तो निकाल बाहर करो ।

दन्तुरा—यदि आप लोग ऐसे न होते तो मदनमंजरी रात-दिन आप लोगों के गुणों का स्मरण क्यों करती ।

संग्रामविसर—अजी मित्र विश्वासघातक, मेरे निःसंतान गांव के पट्टे के विषय में निवेदन करो ।

विश्वासघातक- जुए में उस गाँव की कौड़ी मैंने ले ली है । कोई दूसरी चीज पुनः लाकर कहो । (पत्र देता है ।)

सङ्ग्रामविसरः—(मुखं प्रसार्य पठति ।)

त्रातालीमृतचटकैः सूकरविड्भिश्च मृतकवस्त्रैश्च ।
पवनानीतदलैरपि विक्रीतैः किं न धनलाभः ॥ ६ ॥

(वृद्धां जननीमुपनीय कुट्टनीं प्रति ।) अस्मदाखेटकौतुकं शुना विना न भवति । तदम्बैव कतिपयदिनानि यावदस्तु बन्धके । अनया च प्रतिदिनमवहितया सकलं दासीकर्म कर्तव्यम् । (मदनमञ्जरीमवलोक्य सानन्दम्)

प्रस्खलतु नीविबन्धः स्विद्यतु जघनं प्रवेपतामङ्गम् ।
तदपि भुजंगमनोज्ञा स्मरसंपल्लम्पटा कुलटा ॥ ७ ॥

(सोद्वेगम् ।) विज्ञातास्तावद्विश्वासघातकाधिष्ठिता निजग्रामादयः । तत्प्रार्थ्यतामृणार्थं साधुझंकटकसारः ।

संग्रामविसर—(मुख फैलाकर पढ़ता है)

आँधी से मरे हुए पक्षियों, सूकर की विष्ठाओं और मृतक के कपड़ों तथा हवा से उड़ाकर लाए गए पत्तों की बिक्री से क्या धन-लाभ नहीं होता ॥ ६ ॥ (बूढी माता को समीप में लाकर कुटनी के प्रति) कुत्ते के बिना हमारे शिकार का मजा नहीं मिलता । इसलिये अम्बा ही कुछ दिनों तक बंधक में रहें । और इन्हें सावधानी से समस्त दासीकर्म करना चाहिए । (मदनमंजरी की ओर देखकर आनंद के साथ)

फुफुती की गाँठ (नीवीबंध) खिसक जाय, जाँघ पसीने से भर जाय, शरीर काँप उठे; फिर भी लम्पट की सुन्दरी, काम की सम्पदा, लम्पटा (पर-पुरुषों में आसक्त रहने वाली), कुल्टा ही तो है ॥ ७ ॥

(उद्वेग के साथ) तो विश्वासघातक के द्वारा कब्जा किए हुए अपने गाँव आदि को भी जान लिया । अतः साधु झकटकसार से ऋण के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।

(प्रविश्य ।)

झकटकसारः—सङ्ग्रामविसर, किणिदसुणअस्स जइ कवडिआ ण होन्ति ता मादरं विक्किणिअ कुक्कुरकवडिअं पअच्छ । (सङ्ग्रामविसर, क्रीतशुनकस्य यदि कपर्दका न भवन्ति तदा मातरं विक्रीय कुक्कुरकपर्दकान् प्रयच्छ)

सङ्ग्रामविसरः—ऋणार्तस्य मम तावत्पञ्चदशपणान्युपनयतु भवान् ।

झकटकसारः—सङ्ग्रामविसर, अम्हमज्जादाए गेण्ह कवडिअम् । (सङ्ग्रामविसर, अस्मन्मर्यादया गृहाण कपर्दकान् ।)

सङ्ग्रामविसरः—(सविषादम् ।) कीदृशी ते व्यवहारमर्यादा ।

झकटकसारः—(संस्कृतमाश्रित्य ।)

द्विगुणग्रहणेच्छायां ताम्बूलं नैष्ठिकीं कलाम् ।
भजन्ते ग्राहकाः पूर्वं राजपुत्रगतागतैः ॥ ८ ॥

दन्तुरा—(सोद्वेगम् ।) इमिणा लडअमेलएण उवहसिदा मअणमञ्जरी । सव्वे वि वअणसारा भणिदं वि ण पअच्छन्ति । (अनेन लटकमेलकेनोपहसिता मदनमञ्जरी । सर्वेऽपि वचनसारा भणितमपि न प्रयच्छन्ति ।)

(प्रवेश कर)

झकटकसार—संग्रामविसर, यदि खरीदे कुत्ते के लिए कौड़ियाँ न हों, तो माता को बेंचकर कुक्कुर के लिए कौड़ी दे दो ।

संग्रामविसर—तब तक आप मुझे ऋण के लिए आतुर को पन्द्रह कौड़ी ही दे दें ।

झकटकसार—संग्रामविसर, हमारी मर्यादा से कौड़ी ग्रहण करो ।

संग्रामविसर—(विषाद के साथ) कैसी तुम्हारी व्यवहार-मर्यादा है ?

झकटकसार—(संस्कृत का आश्रय लेकर)

राजकुमारों के आने-जाने के कारण सर्वप्रथम सामान्य ग्राहक लोग भी दुगुना पाने की इच्छा से (कुटनी आदि के द्वारा उपहार में दिए गए) ताम्बूल आदि के रूप में नियमित आदर को स्वीकार करते हैं ॥ ८ ॥

दन्तुरा—(उद्वेग के साथ) धूर्त सम्मेलन ने तो मदनमंजरी का उपहास ही किया । ये सब बात ही कहने वाले हैं, कुछ देते नहीं ।

(नेपथ्ये ।)

परधननिविष्टदृष्टिर्मिथ्याशुक्लस्तमोमयो जगति ।
सितदशनकिरणधोरणिधौतदिगन्तः परिस्फुरति ॥ ९ ॥

अपि च ।

ब्राह्मण्यदर्पपरिपृष्टविरञ्चिलीलः
शंभोरपि व्रतविधावुपहासशीलः ।
कूपाम्बुधौतकपिलाम्बरवेषवर्ती
दम्भप्रियः स्फुरति वञ्चकचक्रवर्ती ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति मिथ्याशुक्लः ।)

मिथ्याशुक्लः—(परिवृत्यावलोक्य च ।) आर्ये, न भेतव्यं न भेतव्यम् । स्वाधीनैव लटकमेलकमण्डली । तथाहि ।

अज्ञानराशिर्व्यसनाकरोऽयमयं कुलव्याधिरुपाधिपूर्णः ।
जटासुरोऽयं भुवि जन्तुकेतुर्विश्वासघाती नहि कश्चिदन्यः ॥११॥

(नेपथ्य में)

पराए धन में नजर रक्खे हुए अंधकारमय मिथ्याशुक्ल (झूठे धर्मात्मा कहलाने वाले) संसार में अपने सफेद दाँतों की किरणावलियों से सारे दिग्मंडल को उजला करते हुए चमकते हैं ॥ ९ ॥

और भी —

जिन्होंने ब्राह्मणत्व के अभिमान में ब्रह्मा की लीला को पीस डाला है, जो व्रतविधान में शंकर का भी उपहास करनेवाले हैं, जो कुएँ के जल से धोए हुए पीले रंग के वस्त्र को धारण करते हैं, वे पाखंडी ठगों के सम्राट् (मिथ्याशुक्ल) शोभित होते हैं ॥ १० ॥

(इसके बाद मिथ्याशुक्ल प्रवेश करते हैं ।)

मिथ्याशुक्ल—(घूमकर और देखकर) आर्ये, मत डरो, मत डरो । धूर्तमण्डली स्वतन्त्र है । क्योंकि :—

ये अज्ञानराशि, ये व्यसनाकर, छल से पूर्ण ये कुलव्याधि, ये जटासुर, ये जन्तुकेतु हैं, जिनके समान संसार में दूसरा कोई विश्वासघाती नहीं ॥ ११ ॥

(सकोपम् ।)

परापकारशून्यो यः क्षणार्धमपि तिष्ठति ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ १२ ॥

(मदनमञ्जरीमवलोक्य स्वगतम् ।)

उल्लङ्घ्य व्यासवाक्यामृतरससरसीं विश्वभव्यामभव्यां
ज्ञात्वा हेयानहेयान्सहजरिपुगणान्वीक्ष्य सभ्यानसभ्यान् ।
सेवामुन्मुच्य शंभोर्जगदभयकलाशासनव्यग्रपाणे-
र्मोहाल्लीलावतीनां व्यसनभुवि नरीनर्ति चेतःपरेतः ॥ १३ ॥

(नेपथ्ये ।)

गुरोर्गिरः पञ्च दिनान्युपास्य
वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च ।
अमी समाघ्रातवितर्कवादाः
समागताः फुङ्कटमिश्रपादाः ॥ १४ ॥

(क्रोध के साथ)

जो दूसरे के अपकार से शून्य होकर आधे क्षण भी रहता है वह लोहार की भाथी की तरह साँस लेते हुए भी जीवित नहीं ॥ १२ ॥

(मदनमंजरी की ओर देखकर मन में)

अमृत रस को टपकाने वाली व्यास की वाणी का उल्लंघन करके, विश्व में भव्य (मंगलदायक) को अभव्य समझकर, हेय (त्यागने योग्य) को अहेय जानकर, असभ्य सहज रिपुओं को सभ्य की तरह देखकर, संसार को अभय-दान देने तथा शासन में व्यस्त हाथवाले भगवान् शिव की सेवा को छोड़कर यह मनरूपी भूत भ्रमवश लीलावतियों की व्यसन भूमि पर बार बार नाच रहा है ॥ १३ ॥

(नेपथ्य में)

गुरु के वचनों की पाँच दिन तक उपासना करके (पढ़ करके) और वेदान्त

(ततः प्रविशति फुङ्कटमिश्रः) ।

फुङ्कटमिश्रः—अये, प्रासादशिखरप्राङ्गणमारूढा मदनमञ्जरी । तथाहि ।

उद्ग्रीवयन्धरणिमण्डलमप्रयत्ना-
दावर्जयन्नमरवृन्दमुखाम्बुजानि ।
अस्या विनोदयति कस्य न चित्तवृत्तिं
प्रासादशैलशिखरप्रणयी मुखेन्दुः ॥१५॥

मिथ्याशुक्लः—भो भोः फुङ्कटमिश्राः, युष्मानभिवादये ।

फुङ्कटमिश्रः—(उच्चैः ।) दीर्घायुर्भूयाः । (उपसृत्य ।) कुशलं भवतां शुण्डवालग्रामनिवासिनाम् ।

मिथ्याशुक्लः—युष्मत्प्रसादात् ।

फुङ्कटमिश्रः—किं व्याख्यायते भवता ।

शास्त्र को केवल तीन दिन तक अध्ययन कर तथा न्यायदर्शन (वितर्कवाद) को सूँघकर (अर्थात् केवल सूँघकर न कि पढ़कर) ये फुंकटमिश्रपाद आए हैं ॥ १४ ॥

(इसके बाद फुंकटमिश्र प्रवेश करते हैं)

फुंकटमिश्र—अरे, मदनमंजरी महल की ऊपरी मंजिल पर चढ़ गई । क्योंकि—

बिना प्रयत्न से पृथ्वीमंडल को गर्दन से ऊपर की ओर उठाता हुआ तथा देवताओं के मुखमंडल को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ प्रसादरूपी पर्वत के शिखर का प्रेमी इसका (मदनमंजरीका) मुखरूपी चन्द्र, भला किसके चित्तको आनंदित नहीं करता ॥ १५ ॥

मिथ्याशुक्ल—अजी फुंकटमिश्र, आपको अभिवादन करता हूँ ।

फुंकटमिश्र—(उच्चस्वरसे) दीर्घायु होवो । (समीप जाकर) आप सब शुण्डवाल गाँव के निवासियों का कुशल तो है ?

मिथ्याशुक्ल—आपकी दया से ।

फुंकटमिश्र—आप क्या व्याख्या कर रहे हैं ?

मिथ्याशुक्ल:—'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इत्यत्र सूत्रे धर्मनिर्णयं विधाय 'अष्टाकपालं हविर्निर्वपेत्स्वर्गकामः' इत्येवमादिभिर्युक्तिभिः साधनाधिकरणं व्याख्यायतेऽस्माभिः।

फुङ्कटमिश्रः—(सहर्षम् ।) वत्स मिथ्याशुक्ल, महामहोपाध्यायोऽसि। (सविमर्शम् ।) अहह। ब्राह्मण्यं विनापि परमः प्रतिष्ठाप्रकर्षः। तथा हि राढीया वचनरचना—

एष व्याकरणं न वेत्ति न कृतः काव्येष्वनेन श्रमः
श्रुत्वाचामति भट्टवार्तिकगिरः स्नाति स्पृशंस्तद्विदः।
चण्डालानिव तर्कशासनपटून्नैयायिकान्मन्यते
राढीयैरतिहर्षगद्गदगलैः प्राभाकरः श्रूयते ॥ १६ ॥

मिथ्याशुक्ल—'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' (चोदना=वेद या विधि, लक्षण=प्रमाण, अर्थ=श्रेयस्साधन जो है उसे धर्म कहते हैं।) इस सूत्र में धर्म का निर्णय करके 'अष्टाकपालं हविर्निर्वपेत्स्वर्गकामः' (अर्थात् जो आठ कपालों में सिद्ध किए हुए पुरोडाश को अग्निदेवता के लिए हवन करे उसे स्वर्ग होता है।) इत्यादि युक्तियों के द्वारा हम साधनाधिकरण (श्रेयस्साधन के विचार) की व्याख्या करते हैं।

फुंकटमिश्र—(सहर्ष) वत्स मिथ्याशुक्ल, महामहोपाध्याय हो। (विचारपूर्वक) आश्चर्य है, तुम ब्राह्मणत्व के बिना भी परम प्रतिष्ठा को पहुँच गए। क्योंकि यह [1]राढ़ियों की वचन-रचना है—

यह व्याकरण को नहीं जानता, न इसने काव्यों में परिश्रम किया है, फिर भी भट्ट (कुमारिल भट्ट) के वार्तिक के शब्दों को सुनकर आचमन करता है

---

१ राढ़िया—'राढा' या 'राढी' शब्द बंगाल प्रांत के उत्तरी भाग के लिए व्यवहृत किया जाता है। दूसरी जनश्रुति यह भी है कि राजा लक्ष्मणसेन के शासन-काल में दक्षिण भारत से आए हुए ब्राह्मणों को राढा या राढी नाम प्रदान किया गया और उनसे संबंधित जो रीति या परिपाटी चली वही 'राढ़िया' कहलाई।

मिथ्याशुक्लः—(सकोपम् ।) अद्यास्मद्यज्ञागारवार्ता नाकर्णिता भवद्भिः । तथाहि ।

संसिक्ते कुशवारिणा मखपतौ ब्रह्मण्युपान्तस्थिते
यज्ञागारगताः कथं कथमपि स्पृष्टाः किमिन्द्रादयः ।
कोणस्थोऽपि पुरस्कृतोऽपि यजुषा गौरीभुजंगो मया
हव्याशाविकलः कपालिकधिया निष्कासितो धूर्जटिः ॥ १७ ॥

किं च, विपमैव भवतां वाचोयुक्तिर्दुण्ढौलीग्रामनिवासिनाम् । पृच्छामि तावत् । एकदण्डमतमभ्यस्तं भवद्भिः । तत्कथं मिश्रता भवताम् ।

फुक्कटमिश्रः—व्याख्यायतेऽस्माभिः कर्ममीमांसा ब्रह्ममीमांसा च । अतो दर्शनद्वयज्ञानाद्वयं मिश्राः ।

और उनके जाननेवालों से छूकर स्नान करता है । तर्कशास्त्र में पटु नैयायिकों को चंडाल की तरह मानता है, अत्यन्त हर्ष के कारण गद्-गद् कंठवाले राढियों के द्वारा प्रभाकर (प्रभाकर का शिष्य) सुना जाता है (माना जाता है) ॥१६॥

मिथ्याशुक्ल—(क्रोध के साथ) आज आपने हमारी यज्ञागारसंबंधी बात नहीं सुनी ? क्योंकि—

यजमान (मखपति) को ब्रह्माके समीप में कुश के जल से संसिक्त यज्ञासन पर बैठा दिए जाने के बाद, यज्ञमण्डप में आए हुए इन्द्र आदि देवताओं को बड़ी कठिनाई से स्पर्श किया गया । यज्ञमंडप के एक भाग में स्थित तथा यजुर्वेद के मंत्र से पुरस्कृत गौरी के भुजंग (शिव) को, जो हविष्यान्न की आशा से व्यग्र हो रहे थे; मैंने कापालिक बुद्धि के कारण निकाल बाहर कर दिया ॥ १७ ॥

क्योंकि दुण्ढौली गाँव के निवासी आपलोगों की बात उल्टी-पुलटी ही है । इसलिए पूछता हूँ कि आपने तो एकदण्ड (शंकराचार्य) के मतका अभ्यास किया है, तब आपकी मिश्रता कैसे हुई ?

फुंकटमिश्र—हम कर्ममीमांसा (= पूर्वमीमांसा, जिसमें धर्मका व्याख्यान होता है) और ब्रह्ममीमांसा (= वेदान्त, जिसमें ब्रह्म का विचार किया जाता

मिथ्याशुक्लः—अये, परस्पराविरोधादेकमेव दर्शनम। तत्कुतो मिश्राभिधानम्। किं च, वेदान्तवादिनां भवतामप्रामाणिकमद्वैतं प्रामाणिकं वा। प्रमाणमस्ति चेद् द्वैतापत्तिः। अथ प्रमाणं नास्ति चेत्कथमद्वैतोपलब्धिः।

फुङ्कटमिश्रः—अस्त्येव प्रमाणं किं त्वभिन्नम्।

मिथ्याशुक्लः—तदेव प्रमाणं तदेव प्रमेयमिति गम्भीरा वेदान्तचर्चा।

फुङ्कटमिश्रः—अलमतिशुष्कचर्वणेन। मदनमञ्जरीस्वस्त्ययनार्थं वयमागताः।

मिथ्याशुक्लः—(मदनमञ्जरीमवलोक्य।)

किं नेत्रयोरमृतवर्तिरियं विधातु-
राद्या किमद्भुतशरीरविधानलेखा।
संसारसारमहह त्रिजगत्पवित्रं
तद्रत्नमेतदुपसर्पति पङ्कजाक्षी ॥ १८ ॥

है) की व्याख्या करते हैं। अतः दो दर्शनों के ज्ञान के कारण हम मिश्र हुए।

मिथ्याशुक्ल—अरे, परस्पर में कोई विरोध न होने के कारण एक ही दर्शन कहलाया। तब मिश्र नाम कैसे हुआ ? और भी आप वेदान्तवादियों का अद्वैत अप्रामाणिक है या प्रामाणिक ? यदि प्रामाणिक है, तबतो द्वैत की आपत्ति हो गई। अथवा यदि प्रामाणिक नहीं है, तब कैसे अद्वैत की उपलब्धि हुई ?

फुंकटमिश्र—प्रमाण तो है ही, किन्तु भिन्न नहीं है।

मिथ्याशुक्ल—'वही प्रमाण और वही प्रमेय' यदि ऐसा है, तबतो आप की वेदान्तचर्चा भी बड़ी गंभीर है।

फुंकटमिश्र—अत्यन्त शुष्क विषय की चर्चा की आवश्यकता नहीं है। हमलोग तो मदनमंजरी की स्तुति करने के लिए आए हैं।

मिथ्याशुक्ल—(मदनमंजरी की ओर देखकर)

क्या यह दोनों नेत्रों की अमृतशलाका है या ब्रह्मा की अद्भुत शरीर निर्माण की पहली रेखा है। वाह, तीनों लोक में पवित्र, संसार का सार-रूप तथा रत्नस्वरूप यह कमलनयनी समीप में उपस्थित है ॥ १८ ॥

अपि च ।

एतस्याः स्तनभारभङ्गुरमुरः पीना नितम्बस्थली
मध्यं मज्जति नाभिगर्तपतितं नाभ्यं वलं चुम्बति ।
धैर्यं धेहि मनःकुरङ्ग पुरतो रोमावलीवागुरा
तत्किं भावि गतागतव्यसनिनः किं वा विधेयं विधेः ॥१९॥

(सहर्षम् ।) पुनरवलोक्यतामियम् ।

फुङ्कटमिश्रः—(तामवलोक्य ।)

लावण्यामृतसरसी ललितगतिर्विकचकमलदलनयना ।
कस्य न मदनशरासनविधुरमनस्तापमपहरति ॥ २० ॥

और भी—

इसका वक्षस्थल स्तन के बोझ से झुक सा गया है, नितम्ब-भाग मोटा है, मध्य भाग तो नाभिके गढे में गिर कर डूबा हुआ है; फिर भी नाभिका सहारा पकड़ रहा है। अरे मनरूपी कुरंग, धैर्य धारण करो, क्योंकि आगे रोमावली रूपी जाल पड़ा हुआ है; गतागतव्यसनी (क्षणभर में यहाँ-वहाँ का चक्कर मारने वाले) प्राणीका क्या होने वाला है अथवा विधिका क्या विधान है (नहीं कहा जा सकता) ॥ १९ ॥

(सहर्ष) फिर से इसे देखो ।

फुंकटमिश्र—(उसको देखकर)

लावण्यरूपी अमृत के कारण रसीली, मनोहर चालवाली, विकसित कमल की पंखुड़ियों की तरह आँखोंवाली यह बाला, काम के बाण से बेचैन किसके मन की पीड़ा को नहीं हर लेती है ॥ २० ॥

अपि च ।

तैस्तैर्बन्धप्रबन्धैः कति कति न कृता जागरा नागरीभि-
नीतः कामः प्रतिष्ठां रतिरभसरसप्रार्थनाभिर्नवाभिः ।
तन्वीयं किं तु नीलोत्पलदलयुगलप्रोज्ज्वलस्निग्धदृष्टि-
र्निर्व्याजैरङ्गहारैरुपचरति चमत्कारमन्तर्गभीरम् ॥ २१ ॥

मिथ्याशुक्लः—अरेरे नरपशो, विषमाः शृङ्गारकथाः । अतिसंनिहित-मदनचेष्टानुवादिन उक्तिरेव ते ग्राम्या । तत्तद्विशेषरहितैश्च वचनैर्न किंचिदुक्तं भवति । तथाहि ।

यज्जल्पितं किमपि यच्च विलोकितं य-
दाज्ञाप्रदानमसकृद्भुजवल्लिबन्धः ।
प्रत्यङ्गचुम्बनकलाकलहानुवृत्ति-
रेतत्सुखं तदधिका मदनस्य सृष्टिः ॥ २२ ॥

और भी—

उन-उन बन्ध (रतिसंबंधी १६) या ८४ आसन—प्रबन्धों के द्वारा प्रवीण स्त्रियों ने कितने-कितने जागरण नहीं किए (अर्थात् इन सोलह आसनों को करते हुए पति के साथ में कितनी रात तक न जागती रही हैं) । रति में वेग होने के कारण रस (अनुराग की अनुभूति) के बारे में नई-नई आकांक्षाओं के द्वारा काम की प्रतिष्ठा हो गई है । किन्तु यह तन्वी, जिसकी दोनों आँखें नीले रंग के कमलदल की भाँति उज्ज्वल तथा स्निग्ध हैं, छलरहित अंगों के चालन (हरकत) से हृदय में गम्भीर चमत्कार पैदा कर रही है ॥ २१ ॥

मिथ्याशुक्ल— अरेरे नरपशु, शृंगार की वार्ता कठिन है । अत्यन्त निकट से कामजनित चेष्टाको अभिव्यक्त करनेवाली तुम्हारी उक्ति ही गँवारू है । क्योंकि—

जो कुछ बोलना, जो कुछ (टेढ़ी निगाह से) देखना, जो कुछ आज्ञा

(इत्यन्योन्यं कलहं कुरुतः। ततो मिथ्याशुक्लेन गलहस्तं दत्त्वा निःसारितः फुङ्कटमिश्रः।)

(ततः प्रविशति चमरसेनविहारवासी व्यसनाकरो वन्दी।)

व्यसनाकरः—(पुरोऽवलोक्य।) हा धिक्, कष्टम्। पृथुजघनया रजक्या विना रजन्यां समुत्खातनिधानस्थानमिव विभाति भवनम्। तथाहि।

अनङ्गमङ्गलारम्भकुम्भाविव पयोधरौ।
कस्य नार्तिहरौ तस्याः करपल्लवसंगतौ॥ २३॥

अपि च।

सप्रेमप्रसराः प्रमोदमधुराः पीपूषवर्षोत्कराः
सान्द्रानन्दकराः स्मरज्वरहरास्तास्ताः कलाः सुभ्रुवः।
प्रातर्विह्वलयन्ति नः स्मृतिपथारूढा निगूढा मनः
कृत्याकृत्यविचारनिष्ठुरकथासंबन्धगन्धच्छिदः॥ २४॥

देना, बार-बार भुजारूपी लताओं से बाँधना, प्रत्यंगों के चुम्बन की कला में कलह का अनुसरण करना—ये सब सुख कामदेव की व्यतिरिक्त सृष्टि है॥२२॥

(इसके अनन्तर परस्पर झगड़ते हैं। इतने में मिथ्याशुक्ल गले में हाथ देकर फुंकटमिश्र को निकाल बाहर कर देता है।)

(तब चमरसेन विहार का निवासी व्यसनाकर वंदी प्रवेश करता है।)

व्यसनाकर—(आगे देखकर) हाय धिक्कार है, कष्ट है। मोटी जांघ वाली धोबिन (रजकी) के बिना रात्रि के समय में यह भवन, जहाँ का खजाना उखाड़ा जा चुका है, ऐसे स्थान जैसा लगता है। क्योंकि:—

कामदेव के मंगल-आरंभ के कलश की तरह उसके दोनों स्तन जो अंगुलियों के संगी हैं, भला किसकी पीड़ा (काम व्यथा) नहीं हरनेवाले हैं॥

और भी—

सुभ्रू (अच्छी भौंहों वाली रमणी) की प्रेम के साथ फैलने वाली, हर्ष के कारण मधुर, अमृत की वर्षा करने वाली, घना आनंद देनेवाली तथा काम-

(परिवृत्य)

दिगम्बरः—अलेले भिक्खुआ, दूलं गच्छ। असदिसजादिफंसदूसिदो सि। (अरेरे भिक्षुक, दूरं गच्छ। असदृशजातिस्पर्शदूषितोऽसि)।

व्यसनाकरः—धिङ्मूर्ख, जातिरेव नास्ति। तथा च सुगतमतानुगं वचः।

एतासु पञ्चस्ववभासिनीषु प्रत्येकबोधस्फुटमण्डलीषु।
साधारणं षष्ठमिहेक्षते यः शृङ्गं शिरस्यात्मन ईक्षते सः ॥ २५ ॥

किं चास्मन्मते क्षणिकाः सर्वे भावाः। न ह्यात्मा स्थायीति। तन्नः कुत्र रजकीदूषणम्।

दिगम्बरः—ता किं दिण्णो दोस उववण्णोत्थि णो वा। (तत्किं दत्तो दोष उपपन्नोऽस्ति न वा।)

व्यसनाकरः—विनाशशीला भावा जायन्ते।

जनित ताप को हरनेवाली वे-वे कलाएँ, जो निगूढ हैं और स्मृतिपथ में बार-बार आती हैं और जो कर्तव्याकर्तव्यके विचार के निष्ठुर प्रसंग की गन्ध का भी विच्छेद करने वाली हैं, प्रातःकाल हमारे मनको व्याकुल कर देती हैं ॥ २४ ॥

(घूमकर)

दिगम्बर—अरेरे भिक्षुक, दूर हो। तू असमान जातिके स्पर्शसे दूषित है।

व्यसनाकर—धिक् मूर्ख, जाति ही नहीं है। और यह बुद्धके मत का अनुसरण करने वाला वचन है :—

प्रत्येक बोध (ज्ञान) की स्फुटमंडली इन अवभासमान पंच (पाँच) में जो व्यक्ति सामान्य छठाँ पदार्थ देखता है, वह अपने मस्तक में शृंग को देखता है (अर्थात् बुद्ध के अनुसार 'पंचस्कंध' के अतिरिक्त छठां 'जाति' जैसा कोई पदार्थ नहीं है)॥ २५ ॥

और क्योंकि। हमारे मत में सब भाव क्षणिक हैं। यहाँ तक कि 'आत्मा' भी स्थायी नहीं है। इसलिए हमको रजकी का दोष कैसे लगा।

दिगम्बर—तब क्या दिया (लगा) हुआ दोष उत्पन्न नहीं है ?

व्यसनाकर—सभी पदार्थ (भाव) विनाशशील हैं। (अर्थात् उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं।)

दिगम्बरः—अलेले भिक्खुआ, उप्पत्तिक्खणो विणासक्खणो त्ति पलम्पलाविलुद्धम्। ता भिण्णो उप्पत्तिक्खणो त्ति भिण्णो विणासक्खणो त्ति। (अरेरे भिक्षुक, उत्पत्तिक्षणो विनाशक्षण इति परम्पराविरुद्धम्) तद्भिन्न उत्पत्तिक्षण इति भिन्नो विनाशक्षण इति।)

सभासलिः—(सहासम्।)

शृणोति श्रुतिहीनोऽपि जातिहीनोऽपि जातिमान्।
स्वीकृतक्षणभङ्गोऽपि जेतुमन्यं समीहते ॥ २६ ॥

व्यसनाकरः—धिङ्मूर्ख, किमनेन शब्दच्छलेन। अहं पञ्चाख्यानपठनार्थं दन्तुरया समाहूतः। तत्किमनेन वृथा भिक्षुकलहेन।

सभासलिः—तत्किं तत्र गतो भवान्।

व्यसनाकरः—(अश्रुत्वैव मदनमञ्जरीमवलोक्य।)

क्रिमपि क्रिमपि क्वापि क्वापि लभ्या सखीभ्यः
पृथुलशिथिलनेत्रप्रान्तकान्तैर्वचोभिः।
उषसि सुरतसंपत्ताण्डवाडम्बराणि
प्रथयति शिथिलाङ्गी कस्यचित्पुण्यभाजः ॥ २७ ॥

दिगम्बर—अरेरे भिखुए, 'उत्पत्तिक्षण' तथा 'विनाशक्षण' ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। इसलिए उत्पत्तिक्षण भिन्न है और विनाशक्षण भिन्न है।

सभासलि—(हंसी के साथ)

श्रुति (वेद या कान) से हीन होकर भी सुनता है, जाति से हीन होकर भी जाति वाला है। क्षणभंगुरता को स्वीकार किए हुए भी दूसरे को जीतना चाहता है ॥ २६ ॥

व्यसनाकर—धिक् मूर्ख, शब्दछल से क्या प्रयोजन। दन्तुरा ने मुझको पंचाख्यान पढ़ने के लिए बुलाया है। इसलिए व्यर्थ में इन भिक्षुओं के टंटे से क्या मतलब।

सभासलि—तब क्या आप वहाँ गए थे!

व्यसनाकर—(बिना सुने ही मदनमंजरी की ओर देखकर)

सखियों के द्वारा (माध्यमसे) कभी-कभी कहीं प्राप्त होनेवाली यह शिथि-

(ततः कलहं कृत्वा दिगम्बरेण निःसारितो व्यसनाकरः ।)

दिगम्बरः—(परिवृत्य ।) भो उवज्झाअ महाभाअ, हगे कामाउले । विवाहसद्धालुणी एसा वि कुट्टणी तरुणी व्व पडिहादि । ता मज्झ कदे पदाणेण पसीददु । मअणमञ्जरी इण तुम्ह अणुरत्ता भोदु । (भो उपाध्याय महाभाग, अहं कामाकुलः ! विवाहश्रद्धालुरेषापि कुट्टनी तरुणीव प्रतिभाति । तन्मम कृते प्रदानेन प्रसीदतु । मदनमञ्जरी पुनर्युष्मदनुरक्ता भवतु) ।

सभासलिः—(ततः संकेतस्थाने मदनमञ्जरीमवलोक्य स्वगतम् ।)

आयातासि कथं नमामि चरणौ वासः स्खलत्यूरुतो
मामालिङ्ग्य मृगेक्षणे क्षणमिह व्यालुप्यतां संभ्रमः ।
इत्यासन्नरतेस्तरङ्गितदृशः कम्पाकुलायाः पुन-
स्तस्याः स्यादभिसार एष समयः स्वप्नेऽपि शान्तिः कुतः ॥२८॥

लांगी, भारी तथा शिथिल आँखों के संकेत से सुबह में किसी पुण्यभागी के साथ में हुए संभोगरूपी संपत्ति (कामकेलिरूपी वैभव) के ताण्डवाडम्बर का उद्घोष कर रही है ॥ २७ ॥

(इसके बाद झगड़ा करके दिगम्बर ने व्यसनाकर को निकाल दिया ।)

दिगम्बर—(घूमकर) अजी उपाध्याय महाभाग, मैं कामसे व्याकुल हो रहा हूँ । विवाह के लिए इच्छुक यह कुटनी भी तरुणी की तरह लग रही है । इसलिए मुझको देनेके लिए प्रसन्न होइये । पुनः मदनमंजरी आपमें अनुरक्त होवे ।

सभासलि—(इसके बाद संकेत स्थान में मदनमंजरी को देखकर मन ही मन) तुम आ गईं, कैसे चरणों में प्रणाम करूं, वस्त्र जांघसे सरक रहा है, हे मृगनयनी, क्षणभर यहाँ मेरा आलिंगन करके मेरी आतुरता दूर करो । क्योंकि जिसकी रति (संभोग की इच्छा) सन्निकट है, जिसकी आँखें तरंगित हो रही हैं, जो कामजनित कंप के कारण व्याकुल हो रही है ऐसी (नायिका) का यह समय अभिसार का हो जाय तो, फिर स्वप्न में भी शान्ति कहाँ ॥ २८ ॥

(दिगम्बरं प्रति ।) युक्तमुक्तं भवता किं तु दन्तुरां स्वीकारयामि तावत् । (उपसृत्य ।) दन्तुरे, त्वद्गुणाकृष्टोऽयं दिगम्बरस्त्वामभिलषति । त्वं चाद्यापि नवनवतिवर्षदेशीया युवतिः । तथाहि ।

निबिडितनूपुरमधुराः कस्य निगूढा न सन्ति ते निधयः ।
रिपुरिव यदि न विसर्पति करकिसलयवलयझंकारः ॥ २९ ॥

तदनुष्ठीयतां युवयोर्विवाहः ।

दन्तुरा–(सलज्जम् ।) जं तुम्हाणं संमदं भोदि। (यद्युष्माकं संमतं भवति।)

सभासलिः—(सविमर्शं विषण्णं दिगम्बरमवलोक्य ।) युक्तमुक्तं व्यासेन—

'वेपथुर्मलिनं वक्त्रं दीना दृग्गद्गदः स्वरः ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचके' ॥ ३० ॥

तद्विवाहाय समाहूयतां जङ्गमनामा चतुर्वेदः ।

(दिगम्बर के प्रति) आप ने ठीक कहा किन्तु जबतक दन्तुरा को मनाता हूँ (मंजूर कराता हूँ) । (समीप में जाकर) दन्तुरे, तुम्हारे गुणों पर मुग्ध होकर यह दिगम्बर तुझे चाहता है । और तुम आज भी ९९ वर्ष की युवती हो । और क्योंकि:—

कसकर बाँधे हुए नूपुर के मधुर शब्दरूपी तुम्हारी सम्पत्तियाँ किसके लिये दुर्लभ न होतीं, यदि शत्रु की भाँति करपल्लव में धारण किए गए कड़े की झनझनाहट न होती ॥ २९ ॥

अतः आपदोनों का विवाह सम्पन्न हो जाय ॥

दन्तुरा—(लज्जा के साथ) जो आपकी संमति हो ।

सभासलि—(विचार में लीन तथा खिन्न दिगम्बर की ओर देखकर) व्यास ने ठीक ही कहा है—

कँप-कँपी मुखपर मलिनता, दीनता भरी निगाह गद्-गद् स्वर—ये सब चिह्न मौत के समय में आ जाते हैं; वे ही सब चिह्न याचक में भी रहते हैं ॥ ३० ॥

इसलिए विवाह के लिए जंगम नामक चतुर्वेदी को बुलाओ ।

(प्रविश्य ।)

जङ्गमः—अद्य मम कुट्टनीविवाहव्याकृष्टस्य भुजाभ्यां गङ्गां समुत्तीर्य समागतस्य संध्यापि विस्मृता । अहह, आमन्त्रितस्यापि मे संध्यावन्दनासक्तस्य महती वेलातिक्रान्ता । तन्न युक्तम् । तथा चाह भगवान्व्यासः—

'स्वकार्यव्यापृतेनापि धर्मः कार्योऽन्तरान्तरा ।
दाम्ना बद्धोऽपि हि भ्राम्यन्घासग्रासं करोति गौः' ॥ ३१ ॥

(उपसृत्य ।)

क्षपणकः—चउव्वेअ, तुम्ह चलणजुअलं पणमामि । (चतुर्वेद, युष्मच्चरणयुगलं प्रणमामि ।)

चतुर्वेदः—

दोषाकरमुखीमेनां दन्तुरां प्राप्य चण्डिकाम् ।
भज त्वं शूलिनः कान्तिं श्मशानाश्रमवासिनः ॥ ३२ ॥

सभासलिः—भो भोः चतुर्वेद, सत्वरमनुष्ठीयतामनयोर्विवाहः ।

प्रवेशकर

जंगम—आज कुटनी के विवाह से आकर्षित होकर भुजाओं के द्वारा गंगा को पार करके आए हुए मेरी सन्ध्योपासना भी छूट गयी । खेद है कि मुझ आमंत्रित तथा सन्ध्यावंदन में आसक्त का बहुत समय बीत चुका । सो ठीक नहीं हुआ ! क्योंकि भगवान् व्यास ने कहा है—

निजी कार्य में लगे रहने पर भी बीच-बीच में धर्म करना चाहिए । क्योंकि रस्सी से बँधी हुई भी गाय घूम-घूम कर घास खाती रहती है ॥ ३१ ॥

(समीप में जाकर)

क्षपणक—चौबेजी, आप के दोनों चरणों में प्रणाम करता हूँ ।

चतुर्वेद—चन्द्रमा के समान मुखवाली (दन्तुरा पक्ष में—कलंकित मुखवाली), चण्डी (दन्तुरा पक्ष में—कर्कशा राक्षसी) इस 'दन्तुरा' को प्राप्त करके तू भी श्मशान-निवासी भगवान् शंकर की शोभा प्राप्त कर ॥ ३२ ॥

सभासलि—अजी चतुर्वेद, शीघ्र ही इसका विवाह सम्पन्न कीजिए ।

चतुर्वेदः—(सहासम् ।)

स्तनौ प्रचलितावस्या विमर्दातिवशोन्मुखौ ।

विशुष्कस्य नितम्बस्य वार्तां कर्तुमिवोद्यतौ ॥ ३३॥

तदद्यैव ज्येष्ठानक्षत्रे शनैश्चराधिष्ठिते धनुषि लग्ने युक्तः स्यादनयोर्विवाहः ।

सभासलिः—तत्रैव वैधव्यं ध्रुवम् ।

चतुर्वेदः—उपरितनभागे यदा वैधव्यं तदा को दोषः ।

सभासलिः—साधूक्तम् ।

चतुर्वेदः—(दिगम्बरमर्कपुष्पैरलंकृत्य ।) तदुपसर्पतु तावदेनां वरवेषधारी करग्रहणाय दिगम्बरः ।

(ततः प्रविशति वरवेषधारी दिगम्बरः ।)

चतुर्वेदः—(स्वस्त्ययनार्थं पुष्पाक्षतान्यादाय ।)

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३४ ॥

चतुर्वेद—(हँसी के साथ)

इसके लटके हुए दोनों स्तन अच्छी तरह मसल देने के कारण नीचे की ओर झुके हुए ऐसे लग रहे हैं कि मानो, सूखे नितम्ब के साथ बात करने के लिए तैयार हों ॥ ३३ ॥

अतः आज ही ज्येष्ठा नक्षत्र में शनैश्चर के रहने पर धनुष लग्न में इन दोनों का विवाह पूर्ण हो जाय ।

सभासलि—वहीं पर तो वैधव्य निश्चित है ।

चतुर्वेद—यदि वृद्धावस्था में वैधव्य हो जाय तो दोष क्या ।

सभासलि—ठीक ही कहा ।

चतुर्वेद—(दिगम्बर को आक के फूलों से अलंकृत कर) तब वरवेषधारी दिगम्बर 'पाणिग्रहण' के लिए इसके समीप जाय ।

(इसके बाद वरवेषधारी दिगम्बर चारों ओर घूमता है ।)

चतुर्वेद—(मंगल के लिए फूल और अक्षत लेकर)

जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है । इसलिए इस अनिवार्य विषय में तुम्हें सोच नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥

दिगम्बरः—(कुट्टनीं प्रति शनैः ।) तुम्हे किं वेसामाई उत वेसा । जइ वेसा ता गहणकं लेहु । अह जइ वेसामाई ता अभिवादेमि । (यूयं कि वेश्यामाता उत वेश्या । यदि वेश्या तद्ग्रथनकं गृहाण । अथ यदि वेश्यामाता तदाभिवादये) ।

दन्तुरा–अण्णस्सिं समए भणिस्सदि । (अन्यस्मिन्समये भणिष्यति) ।

(दिगम्बरः करग्रहणं कृत्वोपविशति ।)

सभासलिः—अस्मिन्कन्यादानसमये दक्षिणार्थं सुगन्धताम्बूलार्थं च पदहडाग्रामो मया दत्तः । मधुपर्कार्थं विसहडाग्रामश्च ।

चतुर्वेदः—भो भो उपाध्याय, यावदाभ्यां लीलागारे रतिर्न दीयते तावत्कुतो यौतुककौतुकम् ।

सभासलिः—एतयोरत्र कौतुकागारे महाशय्या क्रियताम् । यो यत्र म्रियते तस्य तत्रैव दाहो युक्तः ।

चतुर्वेदः—(उभावप्यवलोक्य ।) अपनीतोऽस्य हट्टविलासिनीविमर्देन विगन्धः । तदलं कालविलम्बेन । प्रदीयतां मे वैवाहिकी दक्षिणा ।

दिगम्बर—(कुट्टनी के प्रति धीरे से) आप क्या वेश्या की माता हैं या वेश्या, यदि वेश्या हैं तो 'ग्रथन' (गठबंधन) ले लें । अथवा यदि वेश्या-माता हैं, तब तो अभिवादन करता हूँ ।

दन्तुरा—यह अन्य समय में बताया जायगा ।

(दिगम्बर हाथ पकड़ कर बैठता है।)

सभासलि—इस कन्यादान के समय मैंने दक्षिणा और सुगंधित ताम्बूल के लिए 'पदहडा' गाँव दिया तथा मधुपर्क के लिए 'विसहडा' गांव ।

चतुर्वेद—अजी उपाध्याय, जब तक ये दोनों लीलागार में रति-दान नहीं करते तब तक दहेज (यौतुक) का कुतूहल (आनंद) कहाँ ?

सभासलि—इस कौतुकागार में इन दोनों के लिए 'महाशय्या' का प्रबन्ध करो जो जहाँ मरता है उसका वहीं पर 'दाह' उचित है ।

चतुर्वेद—(दोनों को देखकर) बाजार की वेश्याओं के साथ रगड़ करने से इसकी जो दुर्गंध थी वह दूर हो गई । अतः समय बिताना ठीक नहीं । मुझे विवाह कराने की दक्षिणा दें ।

(दिगम्बरो हरीतकीयुगलमुपनयति ।)

चतुर्वेदः—(सकोपम् ।) अरे रे निर्लज्ज नग्नक लुञ्चितकेश दिगम्बर, अनेकतव्रतोपवासनियमपरस्य शूद्रप्रतिग्रहनिवृत्तस्य चतुर्वेदाध्यायिनः शुक्लस्य महाब्राह्मणस्य मम दक्षिणाप्रलोपस्त्वया कर्तव्यः । तदेनामादाय यास्यामि । (इति परस्परं दक्षिणाकलहाकुलौ नृत्यतः ।)

कुलव्याधिः—(परिवृत्य ।)

विहसन्तकअन्तनहच्छेडा अहवा तिमिराणँ घडा णिविडा ।
भअवाणसमाणसमुल्लसिआ मिलिआ जमि रक्खसरक्खसिआ ॥३५॥
कलकङ्कणलम्भिअबाहुलदा घणकुन्तलका मुहभूसणआ ।
वरिसा उण मेहजलाकुलिआ णिविडन्तपओहरमण्डलिआ ॥३६॥

(विहसत्कृतान्तनखच्छेदा अथवा तिमिराणां घटा निविडा ।
भगवत्समानं समुल्लसिता मिलिता यथा राक्षसराक्षसिकाः ॥
कनककङ्कणजृम्भितबाहुलता घनकुन्तलका मुखभूषणकाः ।
वर्षाः पुनर्मेघजलाकुलिता निविडितपयोधरमण्डलिताः ॥)

(दिगम्बर दो हर्रें देता है)

चतुर्वेद—(क्रोध के साथ) अरे रे निर्लज्ज, नंगे, लुञ्चितकेश दिगम्बर ! अनेक व्रत तथा उपवास के नियमों को पालन करने वाले, शूद्र का दान न लेने वाले, चारों वेदों के ज्ञाता मुझ शुक्ल महाब्राह्मण की दक्षिणा का तेरे द्वारा लोप ठीक ही है । तब इसे लेकर चला जाऊँगा ।

(इसके बाद परस्पर दक्षिणा-कलह से व्यग्र दोनों नाचते हैं ।)

कुलव्याधि—(घूमकर)

हँसते हुए जमराज को मानो नखच्छेद हो, अथवा अन्धकारों का घना समूह हो, भगवान् (राम या कृष्ण) के समान जो उल्लसित हो रही हो, जैसे आपस में राक्षस और राक्षसियों का मिलन हो रहा हो, जिसमें सोने के कंगन भरी बाहें फैल रही हों (यहाँ बिजली की चमक से तात्पर्य है) घने बालों का

(इति पुनर्नृत्यतः)

सभासलिः—

चुम्बन्तः सरसीमुखाम्बुजवनं पान्थप्रमोदच्छिदः
प्रोन्मीलन्नवमालिकापरिमलाः श्रीखण्डसंबन्धिनः ।
संभोगश्रमवैरिणः स्मरशरव्यापारविस्तारिणः
कार्णाटीभुजवल्लिबन्धविकलाः सर्पन्ति मन्दानिलाः ॥३७॥

अपि च ।

भूदेवस्वस्तिवादस्तिरयतु दुरितं नीरुजः सन्तु सन्तः
सन्तु प्रौढारिवीरव्रजविजयकलाशालिनः क्षोणिपालाः ।
आस्तां विद्वत्प्रकाण्डश्रवणपुटचमत्कारि काव्यं कवीना-
मस्तु व्यामोहशान्तिः सृजतु हृदि मुदं निश्चलां चन्द्रचूडः ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

दन्तुरापरिणयो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

———

झुंड हो जो मुख का भूषण स्वरूप है; पयोधर (मेघ,—नायिका-पक्ष में स्तन) मण्डलित मेघ के जल से आकुल यह वर्षा ऋतु तो नहीं है ॥३५-३६॥

(इसके बाद पुनः नाचते हैं।)

सभासलि—रस भरे मुखरूपी कमलवन को चूमता हुआ, पथिकों के आनंद को भंग करनेवाला, खिली हुई नवीन बेला की खुशबू जिसमें आ रही है, चंदन का संग करने वाले संभोगजनित श्रम के वैरी (अर्थात् संभोगजनित थकान को दूर करने वाला), काम के बाण-व्यापार को बढ़ानेवाला (अर्थात् कामोद्दीपक), कर्नाट देश की रमणियों की भुजलता में बँध जाने के कारण व्याकुल मंद पवन बह रहा है ॥ ३७ ॥

और भी :—ब्राह्मणका आशीर्वाद पापको दूर करे, सज्जन पुरुष रोगसे मुक्त रहें, राजा लोग प्रौढ तथा शत्रु-वीरमंडल के ऊपर विजय की कला से सुशोभित होवें, कवियोंका काव्य श्रेष्ठ विद्वानोंके कानोंमें चमत्कार पैदा करे, व्यामोह (अज्ञान) की शांति हो, भगवान् शंकर हृदय में अचल आनंद का सर्जन करें ॥ ३८ ॥

(इसके बाद सबके सब रंगमंच से चले जाते हैं।)

समाप्तमिदं लटकमेलकं नाम प्रहसनम् ।

कर्णाटी दशलाङ्क्षिगाः

साहित्य की कतिपय पुस्तकें

१ अनर्घराघव। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ८-००
२ अभिज्ञान शाकुन्तल। किशोरकेलि संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। संपूर्ण ६-००
३ अभिज्ञानशाकुन्तल (चतुर्थ अङ्क) संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-००
४ अभिषेकनाटक। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
५ अविमारक। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ३-००
६ उत्तररामचरित। चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ५-५०
७ ऊरुभङ्ग। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
८ कर्णभार। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२५
९ कर्पूरमञ्जरी। मकरन्द संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
१० चारुदत्त। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
११ दूतघटोत्कच। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२५
१२ दूतवाक्य। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२५
१३ दूताङ्गद नाटक। दूताङ्गद-चन्द्रिका संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-००
१४ नागानन्दनाटक। भावार्थ दीपिका संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ३-००
१५ नाट्यशास्त्र। १-२ अध्याय। मयूख हिन्दी टीका सहित ०-६५
१६ पञ्चरात्र। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-२५
१७ प्रतिज्ञायौगन्धरायण। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-००
१८ प्रतिमानाटक। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-००
१९ प्रबोधचन्द्रोदय। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
२० प्रसन्नराघव। चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ४-००
२१ प्रियदर्शिका। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-३०
२२ बालचरित। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित २-५०
२३ मध्यमव्यायोग। भास विरचित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२५
२४ महावीरचरित। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ४-००
२५ मालतीमाधव नाटक। चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ५-००
२६ मालविकाग्निमित्र। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ३-००
२७ मुद्राराक्षस। शशिकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ३-२५
२८ मृच्छकटिक। प्रबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका सहित
२९ रत्नावली। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित
३० विक्रमोर्वशीय। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित
३१ वेणीसंहार नाटक। प्रबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका स
३२ स्वप्नवासवदत्त नाटक। प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका स

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा विद्याभवन